JANSATTA Paper 17.6.85 (2)

# बिना सांस्कृतिक क्रांति के कुछ होगा नहीं

ए.के. राय

आरक्षण विरोध में एक सवाल हमेशा रखा जाता है वह है मेरिट या मेधातंत्र का। आरक्षण से मेधावी को मौका नहीं मिलेगा और दक्षता घट जाएगी। लेकिन आज सवर्णों के हाथ में राज है लेकिन कोई दक्षता दिखलाई नहीं पड़ती। आर्थिक एकाधिकार की तरह मेधा का एकाधिकार भी समाज के लिए कोई अच्छी बात नहीं। ब्रिटिश भारत में १८८२ से १९०४ के बीच जो १६ आईसीएस हुए थे उनमें १५ ब्राह्मण थे, १९१४ में १२८ मुंसिफों में ९३, १९४४ में ६५० ग्रेजुएटों में ४५२ ब्राह्मण थे। आजाद भारत में १९६९ से १९७८ के बीच सिर्फ १० हरिजन, आदिवासी उम्मीदवार योग्यता के आधार पर आईएएस में और ६ आईपीएस में उत्तीर्ण हो पाए थे। १९७६-७७ में एक भी नहीं। यह कौन सा जादू देश में काम कर रहा है कि तमाम मेधा १८ प्रतिशत ऊंची जाति में सीमित रह जाती है? इसके अलावा अगर आरक्षण प्रशासनिक अदक्षता का कारण होता तो दक्षिण भारत के राज्यों से उत्तर भारत के राज्यों का प्रशासन बेहतर होता क्योंकि दक्षिण भारत में आरक्षण ज्यादा है। लेकिन ऐसा नहीं है। भारत की तरह विकासशील देशों में राज चलाने के लिए किताबी ज्ञान से ज्यादा व्यावहारिक ज्ञान, श्रम की आदत तथा सेवा की मानसिकता की जरूरत है जो निचले तबके के लोगों के अंदर ही आज मिलती है।

आरोप है कि आरक्षण में आम हरिजन, आदिवासी, पिछड़ी जाति के लोगों को लाभ नहीं हुआ। कुछ गिने चुने लोग तमाम सुविधा उठा लेते हैं। इसमें सच्चाई है। यही कारण है कि जैसे सवर्णों के नेता जन्म के आधार पर आरक्षण का विरोध करते हैं पिछड़ी जाति के नेता आर्थिक आधार के नाम से चौंकते हैं। सातवीं योजना से संबंधित जो प्रपत्र सातवीं लोकसभा के अंतिम सत्र में पेश किया गया था उसमें एक लाइन में आर्थिक आधार पर आरक्षण का उल्लेख था जिसके विरोध में सभी पार्टियों के पिछड़ी जातियों के सदस्यों ने हल्ला किया और सरकार को उसे वापस लेना पड़ा। तमिलनाडु में पिछड़ी जातियों के लिए आरक्षण में जो आय की सीमा रखी गई थी। एमजीआर को अंत में उसे हटा देना पड़ा। पिछड़ी जाति के अंदर आर्थिक दृष्टि से संपन्न लोग ही आरक्षण के नेता हैं।-एवं सवर्णों के एकाधिकार के विरोध में होते हुए भी अपने एकाधिकार को छोड़ना नहीं चाहते हैं। लेकिन इसका कारण आरक्षण नहीं बल्कि देश की पूंजीवादी व्यवस्था है जो इस मानसिकता की जनक है। पिछड़ी जाति के अंदर इस नए ब्राह्मणवाद को खत्म करने के लिए यह व्यवस्था करनी होगी कि जिस परिवार ने एक बार आरक्षण की सुविधा ली उसे फॉरवर्ड घोषित करना होगा ताकि परिवार दोबारा आरक्षण की सुविधा न ले पाए और उसे दूसरे लोगों को उपलब्ध कराया जा सके। यह एक नया आंदोलन होगा जो जाति संघर्ष को एकाधिकार विरोधी संघर्ष में बदल देगा।

भारत में जाति व्यवस्था ने जन्म के आधार पर लोगों को बांटे रखा है, प्रश्न है कि उसे कर्म के आधार पर कैसे एक किया जाए। आरक्षण एक माध्यम है, लक्ष्य है जाति व्यवस्था का अवसान। इतिहास की खामियों का सुधरना आसान नहीं। विशेषकर जो खामियां सदियों से चली आ रही हैं। भारत में शिक्षा एवं नौकरी में जो बहुत सी आरक्षित सीटें खाली पड़ी रहती हैं इसका एक कारण जैसे ऊंची जाति की करामात है तो दूसरा कारण निचले तबके के अंदर आकांक्षा तथा प्रयास का अभाव है। जाति व्यवस्था ने सिर्फ सर्वेक्षण को प्रधानता स्वीकारना ही नहीं सिखाया बल्कि दलितों के अंदर अपनी हीन अवस्था को खुद मान लेने की भी आदत डाली। यह हीनता कैसे दूर होगी? उपनिषद का अध्यात्मवाद, गीता के उपदेश, धर्मसूत्र के निर्देश, रामायण में शंबूक की कथा, महाभारत में एकलव्य की कहानी ने युगों से जादू कर शूद्रों को समाज के चरणों में बैठा रखा है। एक बहुत बड़ा आंदोलन चाहिए इस मोहजाल को तोड़ने के लिए। रवींद्रनाथ ने सभ्यता के रथ के सारथी के रूप में शूद्रों की कल्पना की थी। लेकिन इसके लिए समाज को कुछ दिनों का शीर्षासन कराना है जो सामाजिक क्रांति के द्वारा ही संभव है।

अंध संस्कार के अलावा जिस शक्ति के आधार पर भारत में जाति व्यवस्था कमजोर होने के बजाए ताकतवर हो रही है वह है पूंजीवाद के साथ गठबंधन। विदेश निर्भर पूंजीवाद स्वयंबोध को बढ़ता है लेकिन आत्म बल को नहीं। चूंकि यह पूंजीवाद परजीवी है इसलिए श्रम की मर्यादा को प्रतिष्ठित नहीं करता है। जाति व्यवस्था ने समाज में श्रम विभाजन बनाया हुआ है जहां शारीरिक श्रम अंसम्मानित है तथा परजीविता मर्यादित है। भारत में पनपते-पर-निर्भर पूंजीवाद में इस व्यवस्था को एक नया जीवन मिला है। सामाजिक क्रांति बिना औद्योगिक क्रांति के संभव नहीं है। कुछ उद्योगों को उधर-उधर से लाकर जो खड़ा किया है उसने जाति व्यवस्था को तोड़ के वर्ण को ही वर्ग की पोशाक पहनाकर मजबूत किया है। इसलिए किसी भी उद्योग में जहां शारीरिक श्रम तथा कष्ट ज्यादा है वहां हरिजन, आदिवासियों व पिछड़ी जाति के लोग काम करते मिलेंगे जबकि दफ्तर सवर्णों के हाथ में रहेगा। औद्योगिक क्षेत्र भी जातिवाद, सांप्रदायिकवाद का अखाड़ा बन गया है।

हिंदुस्तान की राजनीति भी व्यवस्था विरोधी से ज्यादा श्रमविरोधी है। कारण राजनीति में ऊंची जाति की प्रधानता है। आज भारत में जाति व्यवस्था एवं नई पराश्रयी पूंजीवाद के गठबंधन के कारण एक पूंजीवाद, जातिवाद, संप्रदायवाद पनप रहा है। इसलिए गुजरात एवं पंजाब, जहां पूंजीवाद उद्योग एवं कृषि में ज्यादा विकसित है वहां जातिवाद एवं संप्रदायवाद अधिक उभरा है। अठाहरवीं सदी की अमेरिकी दास व्यवस्था जैसे पुरानी रोमन दास व्यवस्था से ज्यादा अमानवीय थी वैसे ही पूंजीवादी व्यवस्था में जातिवाद, संप्रदायवद, परंपरागत सामंती जाति व्यवस्था से बहुत ज्यादा खतरनाक है। इसलिए आज जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई पूंजीवाद के विरुद्ध लड़ाई का भी एक अंग है। और भारत में समाजवादी दर्शन के आधार पर ही सामाजिक क्रांति भी हो सकती है।

भारत की जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ाई एक लंबी राजनैतिक लड़ाई है जिसके विभिन्न औजारों में आरक्षण भी एक औजार है और इस औजार का असर उसके व्यवहार पर है। सही नेतृत्व एकमात्र समाजवादी प्रगतिशील शक्ति ही दे सकता है जिसने आज तक अपने को जाति समस्या से दूर रखा है। रजनी कोठारी की भाषा में जो जाति समस्या से अलग कोई राजनीति खोज रहे हैं वे निराधार राजनीति के पीछे हैं। यही कारण है कि पश्चिम बंगाल केरल आदि एक दो जगह को छोड़कर भारत की प्रगतिशील ताकतें आज प्रभावहीन हैं। भारत में कोई भी राजनैतिक क्रांति सांस्कृतिक क्रांति के जरिए ही शुरू होगी। और जाति व्यवस्था के विरुद्ध लड़ना भारत में सांस्कृतिक क्रांति का पहला काम होगा। इस देश में सामाजिक शोषण एवं अत्याचार के विरुद्ध ऐसे बहुत से आंदोलन हुए जिन्होंने आर्थिक व्यवस्था के बारे में कोई प्रश्न नहीं उठाया। वैसे ही आर्थिक व्यवस्था के विरुद्ध जो लड़ाई हुई उसमें सामाजिक सवाल थोड़े रखे गए। लेकिन इस देश में जरूरत है एक नई दलित क्रांति की जो सामाजिक आर्थिक ढांचे को तोड़ कर एक नए समाज का निर्माण करे।

समाप्त

# गणतंत्र दिवस पर भारत की खोज

**अवसर**

**एके रॉय**

वह 26 जनवरी 1930 का दिन था. पंजाब की रावी नदी के तट पर राष्ट्रीय नेताओं ने संकल्प लिया था पूर्ण स्वतंत्रता का. कल्पना थी एक ऐसे भारत की, जहां हर आंख से आंसू पोंछा जायेगा और गरीबी, अशिक्षा तथा शोषण से मुक्त एक न्यायपूर्ण व्यवस्था में सभी लोग निर्भय होकर सुखी जीवन बित्ता पायेंगे. इस संकल्प के साथ जो यात्रा शुरू हुई थी, उसके पहले दौर का अंत हुआ था 15 अगस्त, '47 को. जब मध्यरात्रि में संसार सो गया, भारत जाग उठा और नवजात स्वतंत्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री ने घोषणा की अतीत के तमाम वादों को वास्तव में साकार करने की.

26 जनवरी, 1950. पराधीन भारत के स्वतंत्रता दिवस ने स्वाधीन भारत के गणतंत्र दिवस के रूप में जन्म लिया. एक संविधान ग्रहण किया गया, जिसकी उद्देशिका (प्रियेंबुल) एवं नीति निदेशक तत्ववाले अध्याय में उन तमाम मूल्यों को अंगीभूत कर लिया गया, जो स्वतंत्रता संग्राम के आधार थे. रावी नदी के तट पर संकल्प लेने तथा गणतंत्र दिवस पर अपना संविधान ग्रहण करने के बाद आज कितने दिन बीत गये, लेकिन हम उसकी पूर्ति की ओर कितने कदम बढ़ पाये? पंजाब की रावी पाकिस्तान में छूट गयी और भारत की कावेरी जल-विवाद में पड़ गयी. आंख से आंसू कौन पोंछेगा. देश के हर कोने में आज विवाद और आंसू हैं. राजनीति के आकाश में भी बादल छाये हुए हैं. देश दिशाहीन. चुनाव की नजदीकी के कारण गणतंत्र दिवस पर आनेवाली अनिश्चियता की छाया. देश की इस यात्रा में कहां गलती हुई कि हम चारों ओर से अशुभ लक्षणों से घिरे हुए हैं?

सभी जानते हैं कि देश की जनता को आजादी के समय दिखाये गये सपनों को पूरा करने के लिए हमें बहुत दूर जाना होगा. आराम का वक्त नहीं. भारत एक विशाल देश और कितनी समस्याएं- सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक. कुछ विदेशियों ने दी. कुछ विरासत से मिली. इसलिए भारत का स्वतंत्रता संग्राम कभी सिर्फ सत्ता हथियाने की लड़ाई नहीं थी, बल्कि एक मुक्ति तथा उत्थान की लड़ाई थी. भारत की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका का 47वां भाग, इंग्लैंड का 25वां भाग, जापान का 29वां भाग है. इस विशाल खाई को हम पाटेंगे कैसे? इसके लिए चलना ही नहीं, दौड़ना होगा. इस क्रम में विकास के हर स्तर को दोहराना संभव नहीं. बहुतों को लांघ कर पार करना होगा. इसलिए भारत का विकास अपने आप एक महान प्रयोग है. 90 करोड़ की आबादी का यह देश है. सोवियत संघ के विघटन के बाद जो सात धनी देश (जी-7)- अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जापान- आदि आज दुनिया के मालिक बने हुए हैं. जबकि उनकी सम्मिलित आबादी से भी ज्यादा भारत की आबादी है. कितने धर्म, नस्ल, भाषा और संस्कृति. निश्चय ही विकास की राह पर सभी को लेकर, कदम मिला कर चलना एक विशाल चुनौती है.

पंचवर्षीय योजना के शुरू में पंडित नेहरू ने कहा था- 'पश्चिम के उन्नत देशों के विकास के समय आज का यह जनवाद नहीं था. लोगों की मांगों का दबाव इस प्रकार उभर कर आया नहीं था. जब लोगों में राजनैतिक चेतना आती है, तभी लोग मांग करते हैं. आम लोग विकास की कीमत देना नहीं चाहते हैं.' इसलिए एक ओर जल्दी चलना है और दूसरी ओर कष्ट सहने के लिए लोगों को समझा कर साथ में रखना है. इन दो विपरीत दिशाओं में सामंजस्य स्थापित कर एक सर्वमान्य रास्ता भी निकालना है. स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान इस प्रकार एक रास्ता निकला भी था. वह रास्ता था लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद का; जिसका घर योजना, सार्वजनिक क्षेत्र, निश्चित अर्थनीति से बनेगा और जिसका प्राण तत्व होगा- स्वदेशी, स्वनिर्भरता और सदाचार.

1938 के 21 अगस्त को डॉ मेघनाथ साहा के आमंत्रण पर इंडियन साइंस एशोसिएशन के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने कहा था- 'भारत में राष्ट्रीय सरकार गठित होने के बाद पहला कार्यक्रम होगा एक राष्ट्रीय योजना परिषद बनाना. ऐसा कि पूर्ण स्वराज मिलने के पहले ही उसी दिशा में काम शुरू कर दिया गया है.' यहां स्मरण योग्य है कि 1938 में जब सुभाष चंद्र बोस कांग्रेस के सभापति हुए तो पंडित नेहरू की अध्यक्षता में एक राष्ट्रीय योजना परिषद का गठन भी किया गया था. 1927 में ही मास्को में, रूसी क्रांति के दसवें वार्षिक समारोह में नेहरू ने घोषणा की थी, 'आर्थिक योजना द्वारा रूस यदि गरीबी और निरक्षरता को दूर कर सा, तो वह भारत के लिए भी लाभदायक होगा. विकास के लिए

## रावी से कावेरी

भारत, इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस का पथ नहीं ले सकता. हमारे पास 100 से 150 वर्ष देने का समय नहीं है. हम उस रास्ते में बरबाद हो जायेंगे.' अर्थात् देर में जागे विकासशील देशों के लिए पूंजीवादी रास्ता उपयोगी नहीं हो सकता. यह अलग बात है कि आज कुछ दिनों से सोवियत संघ दुनिया के नक्शे पर नहीं है, लेकिन रूस आज गरीबी और निरक्षरता से मुक्त है. यह सही है कि गांधी जी का स्वराज और मार्क्स का समाजवाद एक नहीं है, लेकिन मनमोहन सिंह की नयी आर्थिक नीति तो संपूर्ण विपरीत दिशा में है. स्वदेशी और आर्थिक सुधार, जिसका अर्थ है विदेशीकरण, देनों दो ध्रुवों में हैं. मनमोहन सिंह और गांधी जी में उतनी ही दूरी है, जितनी कि येल्तसिन और लेनिन में है. इसलिए विकास के रास्ते के बारे में स्वतंत्रता संग्राम का जो स्पष्ट दिशा निर्देश था, क्या हम उसका पालन कर रहे हैं, चुनाव के पूर्व यह गणतंत्र दिवस यह सवाल पूछेगा.

कुछ दिनों से सिर्फ भारत में ही नहीं, पूरी दुनिया में ठंडी पश्चिमी हवा पूर्वी हवा पर हावी है, जहां हाल (दिसंबर, '95) के रूस के चुनाव के नतीजे एक अपवाद की तरह हैं. 'विश्व इतिहास की झलक' में नेहरू ने लिखा था कि जो लोग शांतिमय जीवन बिताना चाहते हैं, उन्होंने एक गलत समय में जन्म लिया है. बीसवीं सदी का प्रथमार्द्ध एक उथल-पुथल का काल था, जिसने इतिहास को बनाया था. समय जैसे घोड़े पर सवार था. दुनिया बदल रही थी तेजी से. नयी व्यवस्था, नये आदर्श के साथ उभर रही थी. साम्राज्यवाद धराशायी हुआ. शोषण मुक्त समाज एक वास्तविक संभावना बनी. विश्व के वंचित- उपेक्षित मनुष्यों के अंदर आशा जगी. भय और अभाव से मुक्ति का दिन आसन्न था, लेकिन शायद वह उम्मीद बहुत जल्दीबाजी की थी, और बहुत ज्यादा भी. लहू की तरह इतिहास में भी ऊपर-नीचे होता है. इसलिए जमाना बहुत ऊपर उठ कर फिर नीचे चला गया. सभ्यता में मंदी आयी. मानव बंदी बने. चीजें टूटने लगीं. भारत में स्वदेशी, रूस में समाजवाद. फिर विश्व साम्राज्यवाद ने व्यापार और बंदूक के साथ हमला बोल दिया. गैट, डंकल, विश्व बैंक और मुद्राकोष, नये-नये जाल में बांधने लगे तृतीय विश्व को. एनरॉन और कारगिल की तरह ईस्ट इंडिया कंपनी के वशंज सैकड़ों बहुराष्ट्रीय कंपनियां नये-नये शिकार के लिए निकल पड़ी हैं, जिनकी छल-कपट और हिंस्रता का वर्णन रवींद्रनाथ ने अपनी 'अफ्रीका' शीर्षक कविता में किया है. इसलिए आज चारों ओर अशुभ संकेत दिख रहे हैं. समय भी बेहाल. फटे हुए इतिहास के टूटते हुए पन्नें उड़ रहे हैं हवा में. सिर्फ रूस में ही लेनिन पर हमला नहीं, भारत में भी गांधी पर हमला हो रहा है. राजघाट में भी पहरा बैठाना पड़ा. सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया. कल का अच्छा, आज बुरा. कल का ठीक आज बे ठीक. स्वदेशी आज उपहास की वस्तु. समाजवाद एक गंदा शब्द. स्वनिर्भरता मूर्खता. स्वतंत्रता एक बोझ, पर-निर्भरता ही अच्छी. ऋणं कृत्वा, पेप्सी पीवेत ही सही आर्थिक नीर्ति. योजना अर्थहीन, सार्वजनिक क्षेत्र बिक्री पर. काले धन की कदर. बहुराष्ट्रीय कंपनी मालिक. नैतिकता समाप्त. राष्ट्रीय भावना गायब. भ्रष्टाचार ही शिष्टाचार. संविधान के दिशा निर्देश, नशाबंदी, धन का विकेंद्रीकरण, समानता, काम का अधिकार प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी आदि तमाम अनुशंसाएं अतीत की अनावश्यक कल्पना- विलास मात्र. सिर्फ एक ही वाद की आवाज चारों ओर. वह है विवाद. कावेरी का जल हो या झारखंड का जंगल, अयोध्या का मैदान हो या कश्मीर का पहाड़, हर जगह विवाद फैल रहा है. जाति, धर्म, भाषा और क्षेत्र को लेकर देश पश्चिम बन रहा है. भारत में भारतीय ही अल्पमत हो गये हैं.

भारत की इन तमाम बीमारियों-आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, का कारण विकास का अभाव नहीं, जैसा कि प्रचारित है, बल्कि विकास की गलत दिशा है. पुराने परीक्षित पथ पर चलना नहीं, उसको त्याग देना है. विकास का पूंजीवादी रास्ता ही तमाम रोगों की जड़ है. पंजाब में पूंजीवादी विकास सबसे ज्यादा हुआ उद्योग एवं कृषि दोनों में ही, इसलिए प्रतिव्यक्ति आय में भारत में प्रथम होने के बाद भी अलगाववाद, उग्रवाद, अशांति वहां ही सबसे ज्यादा है. मनमोहन सिंह की नयी आर्थिक नीति-निजीकरण, उदारीकरण, विदेशीकरण, एक ऐसा इलाज है, जो रोग से भी भयंकर है. इसने समाज में एक ऐसे निजी स्वार्थ तथा व्यक्तिवाद को जन्म दिया, जिसने सभी पार्टियों तथा संगठनों को तोड़ दिया. एकता- अखंडता खतरे में घिर गयी. रुपये के साथ मानवीय तत्वों का भी अवमूल्यन कर दिया, जिस कारण हम स्वामी विवेकानंद की जगह चंद्रास्वामी पाते हैं. जल्दी धनी होने के पागलपन ने आदमी को युक्तिवाद से हटा कर चमत्कार का विश्वासी बनाया, जिससे पढ़े- लिखे लोग भी गणेश को दूध पिलाने लग गये. रावी से कावेरी तक की 66 साल की इस महायात्रा में यही हमारी उपलब्धि है. आज अस्तित्व संकट में है. नयी आर्थिक नीति ग्लासनोस्त का ही भारतीय संस्करण है. ग्लासनोस्त ने रूस को तोड़ डाला, तो नयी आर्थिक नीति भारत को कैसे बचायेगी.

इसलिए आज नये सिरे से भारत की खोज में निकलना होगा और गणतंत्र दिवस पर याद करना होगा उस मार्ग को, जिस पर चलने की हमने शपथ ली थी, उस दिन रावी नदी के तट पर.

पूंजीवादी रास्ता ही तमाम रोगों की जड़ है. पंजाब में पूंजीवादी विकास सबसे ज्यादा हुआ उद्योग एवं कृषि दोनों में ही, इसलिए प्रतिव्यक्ति आय में भारत में प्रथम होने के बाद भी अलगाववाद, उग्रवाद, अशांति वहां ही सबसे ज्यादा है. मनमोहन सिंह की नयी आर्थिक नीति-निजीकरण, उदारीकरण, विदेशीकरण, एक ऐसा इलाज है, जो रोग से भी भयंकर है. इसने समाज में एक ऐसे निजी स्वार्थ तथा व्यक्तिवाद को जन्म दिया, जिसने सभी पार्टियों तथा संगठनों को तोड़ दिया. एकता- अखंडता खतरे में घिर गयी. रुपये के साथ मानवीय तत्वों का भी अवमूल्यन कर दिया, जिस कारण हम स्वामी विवेकानंद की जगह चंद्रास्वामी पाते हैं. जल्दी धनी होने के पागलपन ने आदमी को युक्तिवाद से हटा कर चमत्कार का विश्वासी बनाया, जिससे पढ़े- लिखे लोग भी गणेश को दूध मिलाने लग गये. रावी से कावेरी तक की 66 साल की इस महायात्रा में यही हमारी उपलब्धि है. आज अस्तित्व संकट में है. नयी आर्थिक नीति ग्लासनोस्त का ही भारतीय संस्करण है. ग्लासनोस्त ने रूस को तोड़ डाला, तो नयी आर्थिक नीति भारत को कैसे बचायेगी.

सात नवंबर : रूस की नवंबर क्रांति पर विशेष

वोल्गा से गंगा

# नवंबर समाजवादी क्रांति का पैगाम

**अवसर**

एके राय

नवंबर क्रांति दस दिन जब दुनिया हिल उठी. एक अतीत, जो हमेशा वर्तमान में जुड़ा हुआ है और एक भविष्य की ओर इशारा कर रहा है. पूंजीवाद के विरुद्ध वह पहली सफल समाजवादी क्रांति. सोवियत संघ के विघटन के बाद तो जैसे देश और दुनिया की घटनाओं ने उसे और भी ज्यादा प्रासंगिक बना दिया है. मार्क्स के दर्शन पर लेनिन के नेतृत्व में 7 नवंबर 1917 को रूस में यह क्रांति हुई. एक शोषणमुक्त न्यायपूर्ण नये समाज ने जन्म लिया. मजदूर वर्ग, पूंजीपतियों की तथा किसान, जमींदारों की दासता से मुक्त हुए. उत्पीड़ित जातियों- जनजातियों को आत्म नियंत्रण का अधिकार मिला. दुनिया के गरीबों ने एक नयी पहचान तथा हिम्मत पायी. नवंबर क्रांति ने भारत के स्वतंत्रता संग्राम को भी प्रेरणा दी थी. स्वनिर्भर आर्थिक योजना द्वारा अपनी गरीबी, बेरोजगारी और अपना पिछड़ापन दूर कर समाजवादी रूस भारत सहित तमाम विकासशील देशों के लिए एक प्रेरणादायक उदाहरण बना. तो क्या सोवियत संघ के विघटन के साथ ही सब कुछ खत्म हो गया?

अगस्त 1991 विश्वपूंजीवाद और उनके रूसी मित्रों, जो सुविधायोगी थे और जिन्होंने पहले से सरकारी यंत्र और पार्टीतंत्र पर भीतर से कब्जा कर लिया था की एक साजिश के तहत वह समाजवादी राज्य ध्वस्त हुआ. लेकिन विजयी पूंजीवाद कोई चमत्कार नहीं दिखा पाया. बल्कि गरीबी बेरोजगारी, भ्रष्टाचार आदि तमाम बीमारियां वापस आ गयीं. मास्को में भी 'माफिया' निकल आया, जो पहले धनबाद में ही होता था. सांप्रदायिकता और नस्लवाद भी फैले. महान रूस देश ही टूट गया. समाजवाद में हुए रूस के विकास और पूंजीवाद में हुए उनके विनाश ने नवंबर क्रांति के महत्व को और ज्यादा उजागर किया है.

दुनिया का एक छत्र राज मिलने के बाद भी पूंजीवादी विश्व को भी कोई लाभ नहीं हुआ, जो आज आर्थिक मंदी और अकल्पनीय नैतिक पतन का शिकार है. लगता है कि तमाम नेतृत्व का कद ही छोटा हो गया है और संपूर्ण पृथ्वी से ही मानो प्रतिभा का पलायन हो गया है. सिर्फ रूस में ही स्तालिन की जगह येल्तसिन नहीं आये. अमेरिका में रूजवेल्ट की जगह क्लिंटन, इंग्लैंड में चर्चिल की जगह मेजर, और भारत में नेहरू की जगह राव. पहले स्वामी जी कहने से विवेकानंद की छवि उभरती थी, आज चंद्रास्वामी हैं. विवेकानंद से चल कर चंद्रास्वामी, नवंबर क्रांति के युग से आर्थिक सुधार के युग तक यही हमारी प्रगति है. इस रूप में सोवियत संघ ने नहीं रह कर भी प्रमाणित किया है कि पूंजीवाद मानव समाज का भविष्य नहीं बन सकता और समाजवादी व्यवस्था में कितनी भी खामियां रहें, वह निश्चय ही पूंजीवादी व्यवस्था से अच्छी है.

अगस्त प्रतिक्रांति द्वारा समाजवादी व्यवस्था का विघटन और भारत में नयी आर्थिक नीति के तहत स्वदेशी धारा की समाप्ति, करीब- करीब एक ही समय की उपज है. जून-जुलाई 1991 नवंबर क्रांति का रूस जिस तरह समाजवादी अर्थव्यवस्था तथा अपने मूल्यों के साथ भारत की स्वतंत्रता तथा विकास के स्वतंत्रता संग्राम और रूसी नवंबर क्रांति की दिशा एक रही- स्वनिर्भता और समाजवाद. भारत में नयी आर्थिक नीति और रूस में अगस्त प्रतिक्रांति की दिशा भी एक है. निर्भरता और पूंजीवाद. स्वनिर्भरता स्वतंत्रता का आधार है. हमारा स्वतंत्रता संग्राम स्वदेशी आंदोलन का ही विस्तार था. और पर निर्भरता गुलामी का आधार है, जिस ओर सोवियत हीन विश्व में डंकल गैट के जरिये आज हम खींचे जा रहे हैं. एनरॉन प्रकरण के अंत में आत्मसमर्पण और शुरू की सफाई से यह स्पष्ट है कि समाजवाद के लक्ष्य के बिना आजादी कायम नहीं रह सकती, फिर भारत -सह-विकासशील तृतीय विश्व के लिए कौन सा रास्ता सही है?

रूस में जैसे नवंबर क्रांति के मार्ग से हट कर पूंजीवाद की वापसी ने वहां की अर्थ व्यवस्था को तहस- नहस कर दिया, जहां बढ़ने की बजाय राष्ट्रीय आय 30 प्रतिशत घट गयी है, उसी तरह स्वतंत्रता आंदोलन से स्थापित स्वनिर्भरता का मार्ग छोड़ देने के बाद भारत की विकास दर भी घट गयी, औसत 5.5 प्रतिशत से 4 प्रतिशत गंगा उलटी बहने लगी. 1990-91 में 35.5 प्रतिशत (29.8 करोड़) लोग गरीबी रेखा के नीचे जी रहे हैं. फिर गरीबी मिटेगी कैसे? उधर एक दलाली संस्कृति आयी और एक नया अमीर वर्ग पनपा है. चंद्रास्वामी की गिरफ्तारी की मांग करने पर एक मंत्री की ही नौकरी चली गयी. कितने ताकतवर हैं ये लोग. रूस में भी नवंबर क्रांति के युग का अंत करने के लिए उसके आधार-वैज्ञानिक विचारधारा को ढाहने का काम शुरू किया गया है. वहां पर भी भाग्यगणना. अंध संस्कार आदि को प्रोत्साहन दिया जा रहा है. तंत्र-मंत्र के संस्थान पनपे हैं. और वहां एक तांत्रिक, जिसने अपना नाम सदाशिव आचार्य रखा है, ने बेंगलूर के किसी नये स्वामी को तंत्र मंत्र के व्यापार में अपना गुरू भी बनाया है. अर्थात नयी आर्थिक नीति में हमने सामानों के साथ नये अध्यात्मवाद का भी निर्यात शुरू किया है. इस मामले में अगस्त प्रतिक्रांति का रूस भी हमारा ग्राहक बना है. वोल्गा और गंगा फिर से एक ही दिशा में बहने लगी हैं.

नवंबर क्रांति ने रूस में विशाल उद्योगों की स्थापना की थी. 1928 से 1940 के बीच औद्योगिकीकरण की औसत दर 18.4 प्रतिशत थी. जो दुनिया में एक रिकार्ड है. और अगस्त प्रतिक्रांति का रूस उन्हें बेच रहा है. उसी रूस ने स्वतंत्रता आंदोलन की सही आर्थिक नीति, पंचवर्षीय योजना के माध्यम से भारत में 1.36 लाख करोड़ रु का सार्वजनिक क्षेत्र बनाया, जिसे विदेश निर्भरता आंदोलन की नयी आर्थिक नीति आज बाजार में नीलाम कर रही है. पूंजीवाद, जो देश में कमी अपने पैर पर खड़ा नहीं हो सका, ने अपने सहारे के लिए विदेशी पूंजी के लिए के दरवाजे खोल दिये हैं. बेलग्राम विदेशी पूंजी तमाम स्वदेशी उद्योगों को या तो ग्रास करने लगी है, या तो उनका ध्वंस कर रही है. जैसा कि अंगरेजी राज के शुरुआती दौर में हुआ था, जिस पर दादा भाई नौरोजी और कार्ल मार्क्स दोनों ने भारत पर विवेचन करते हुए विस्तार पूर्वक लिखा है. पहले जैसे राजा, महाराजा और नवाब लोग अपनी सुख सुविधा की सुरक्षा के लिए विदेशी शक्तियों को निमंत्रण देकर आये थे, उसे तरह आज देश के नये धनाढ्य शासक विदेश जाकर बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बुला रहे हैं. जो कि ईस्ट इंडिया कंपनी के ही वंशज हैं. संसार में पहली बार कोई राष्ट्र वह भी नब्बे करोड़ का विशाल राष्ट्र विदेश में अपना मालिक खोज रहा है, जो उसके आर्थिक विकास की तमाम जिम्मेवारी लेंगे.

लेनिन : नवंबर क्रांति के नायक

नवंबर क्रांति एक इतिहास लेकर आयी है. एक इतिहास बनाने जा रही है. रूसी क्रांति के पहले भी दुनिया में और भी बहुत- सी क्रांतियां हुई थीं. 1649 में इंग्लैंड में क्रांति द्वारा राजा चार्ल्स प्रथम को मार दिया गया था. 1789 में फ्रांस में जब वहां के राजा लुई 16वें सह तमाम अभिसात तंत्र का सफाया हुआ था. 1871 के पेरिस कम्यून में मजदूरों ने 72 दिनों के लिए सत्ता पर कब्जा कर लिया था. लेकिन उन तमाम क्रांतियों से नवंबर क्रांति की कुछ अलग तथा कई कदम आगे बढ़ कर उसकी एक खास उपलब्धि रही, कि उसने दुनिया में एक शोषण पर आधारित व्यवस्था का अंत कर दूसरी शोषण व्यवस्था स्थापित नहीं की. बल्कि निजी संपत्ति का अंत कर, शोषण की जड़ को ही समाप्त किया तथा नयी आर्थिक योजना सारा समाज निर्माण का एक नया रास्ता अपनाया. लेकिन समाजवादी समाज निर्माण की प्रक्रिया आसान नहीं है. यह यात्रा काफी लंबी है. इसमें उतार-चढ़ाव है. पूंजीतंत्र और राजतंत्र के बीच कितनी उठा-पटक हुई. उसी रूप में समाजवाद और पूंजीवाद में भी होगा. राजतंत्र के विरुद्ध जैसे पूंजीतंत्र विजयी हुआ था, वैसे ही पूंजीतंत्र के विरुद्ध समाजवाद विजयी होगा. इतिहास कभी पीछे नहीं मुड़ता है, बल्कि इस सामयिक विघटन के बाद नव संगठित समाजवादी विश्व और ठोस होकर और निखर कर वापस आयेगा और वापसी का क्रम शुरू भी हो गया है. लिथुवानिया, कजाकिस्तान पोलैंड हंगरी, पूर्व जर्मनी आदि तमाम देशों में पूंजीवादी चुनाव प्रक्रिया से भी कम्युनिस्ट सत्ता में आ गये. हाल के सर्वेक्षण से यह बात भी सामने आयी है कि दिसंबर में होनेवाले संसदीय चुनाव में रूस में भी कम्युनिस्ट पार्टी के पूर्ण बहुमत के साथ सत्ता में वापस आने की संभावना है. उल्लेखनीय है कि बोलग्राड (पूर्व स्तालिनग्राड) के चुनाव में 24 सीटों में से 22 पर कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार बिजयी हुए हैं.

इस रूप में नवंबर क्रांति और स्वदेशी आंदोलन के युग और आज की अगस्त प्रतिक्रांति और तथाकथित आर्थिक सुधार के दौर के बीच के अंतर ने फिर नवंबर क्रांति और समाजवाद के महत्व को पुनर्स्थापित किया है. आज फिर से यह मान हुआ है कि समाजवाद ही आजादी और मुक्ति का रास्ता है. पूंजीवाद को हमेशा के लिए भविष्य मान लेना मानव समाज का, भविष्य पर से ही विश्वास खो देना है. इसके साथ ही नवंबर क्रांति कुछ खास पैगाम लेकर आयी है. जिसे हमेशा याद रखना चाहिए. विशेष कर भारत के परिप्रेक्ष्य में -

- 1917 की महान नवंबर क्रांति की धारा में 1991 की अगस्त प्रतिक्रांति एक सामयिक व्यवधान है, जिसने चारों ओर गिरावट लाकर समाजवाद के महत्व को और ज्यादा उजागर किया है. लेकिन रूस में अगस्त प्रतिक्रांति तथा भारत में नयी आर्थिक नीति यदि हावी हो पायी, तो इसका कारण समाज पर गैर उत्पादक परजीवी तत्वों का हावी हो जाना था, जो उत्पादक वर्ग तथा कार्य संस्कृति को राजनैतिक नेतृत्व में रखने के लिए एक लगातार सांस्कृतिक क्रांति की जरूरत की ओर इशारा करता है.
- समाजवाद, सामाजिक न्याय, स्वनिर्भरता एक दूसरे से जुड़े हुए हैं. यह उत्पादक वर्ग की राजनीति है और विदेशी मदद से विकास परजीवी वर्ग की राजनीति है. केंद्र और राज्य के मंत्री लोग, जो आज पूंजी के लिए विदेशों के दौरे कर रहे हैं, चाहे वे किसी पार्टी के हों, परजीवी वर्ग की राजनीति कर रहे हैं. यह लेनिन की नवंबर क्रांति का रास्ता नहीं, येल्तसिन की अगस्त प्रतिक्रांति का रास्ता है, जो गंगा और बोल्गा दोनों को ही प्रदूषित किये हुए हैं.
- भारत की तरह रूस भी बहुधर्मी, बहुभाषी, बहुनस्ली देश है, जिनमें नवंबर समाजवादी क्रांति ने एकता स्थापित की थी. साथ ही साथ उत्पीड़ित जातियों को आत्मनियंत्रण के अधिकार भी दिये थे, जो आज खंड-विखंड है. अर्थात पूंजीवाद विभाजन और समाजवाद एकता का आधार है. इसलिए जो लोग राष्ट्रीय एकता तथा उत्पीड़ित राष्ट्रीयता-जैसे झारखंड आदि समाज के लिए आत्मनियंत्रण का अधिकार चाहते हैं, उन्हें पूंजीवाद विरोधी समाजवादी चढ़ाई में शामिल हो जाना चाहिए. समाजवादी भारत में ही इस प्रकार की समस्याओं का स्थायी समाधान हो सकता है.

भारत में आज धर्म, जाति, भाषा, क्षेत्र आदि के नाम पर कितनी लड़ाइयां चल रही है, कितने लोग मर भी रहे हैं. लेकिन जो लड़ाई पहले होनी चाहिए और जो सबसे बुनियादी लड़ाई है, जिससे देश के करोड़ों (बहुसंख्य) गरीबों का सीधा संबंध है और जो शोषण मुक्ति की समाजवादी लड़ाई है, वह कहीं नहीं है. सभी लोग अपनी अस्मिता और पहचान खोज रहे हैं और उसके लिए लड़ भी रहे हैं. लेकिन सबसे पहले जिनको अस्मिता और पहचान चाहिए - देश के गरीबों को, दलितों को, किसान-मजदूर या अन्य उत्पादक वर्ग को - वे ही आज के राजनीतिक मंच से गायब हैं, जबकि वे ही इस तमाम संकट के पहले शिकार हैं. आज देश की तमाम बीमारियों की जड़ है. इसलिए आज नवंबर क्रांति का आह्वान है कि हम उस बुनियादी लड़ाई को शुरू करने का संकल्प लें, तो मेहनतकशों के नेतृत्व में देश में सही बदलाव आयेगा.

# नियोगी का जीवन एक विचारधारा बनी

**एके राय**

शंकर गुहा नियोगी जब ज़ीवित थे तब वे नेता रहे। मृत्यु के बाद एक धारा बने। यह एक अनोखा संगम है जो निर्बल समाज का संबल बना। दलित राजहरा आज राजनीति का नया तीर्थ है। मध्य प्रदेश के बीच लोहा खदानों से लाल एक इलाका है जिस की ओर ध्यान नहीं गया था। आज कितने लोग वहां पहुंच रहे हैं। इसके लिए कीमत चुकानी पड़ी काफी। पंद्रह साल पहले हमारे श्रमिकों के बलिदान से यात्रा की शुरुआत आज राजनांदगांव होते हुए सोलह श्रमिकों की शहादत के साथ भिलाई पहुंची। लेकिन दिल्ली अभी भी दूर है। दलित से दिल्ली जाने वाली धारा के प्रवाह में बीते साल सत्ताईस सितंबर रात में शंकर गुहा नियोगी ने भी अपने को मिला दिया। इसलिए इस धारा का संदेश आज सभी को आकर्षित करता है। यह कोई बीते हुए जीवन का व्याख्यान नहीं, एक आने वाले जमाने का जयगान है। नींद तोड़ने का आह्वान जो सोए हुए जमाने को जगाता है, और उन तमाम लोगों की नींद छीन लेता है जिन्होंने सोए हुए एक व्यक्ति को हमेशा के लिए नींद में ढकेल दिया था।

१९७१ से १९९१ बीस साल की दुरूह यात्रा। इस बीच कितनी घटनाएं, कितनी उठापटक दुनिया में हुई। भारत में भी। इतिहास के उलटे रथ ने कितने स्वप्नों को तोड़ डाला। समाजवादी विश्व और सोवियत संघ के विघटन के बाद जैसे तमाम मूल्य ही उलट गए। प्रेगमेटिज्म के युग में आदर्शहीन विश्व ही आदर्श विश्व बना। आज स्वतंत्रता एक बोझ है। आसान रास्ता ही सही रास्ता। सिर्फ रूस में ही येल्तसिन लेनिन को हटा नहीं रहा है, भारत में भी भिंडरांवाले भगत सिंह को भगा रहा है, गोडसे गांधी को और अब राव नेहरू को। चारों ओर मनमोहनसिंह और डंकेल साहब के डंके की आवाज है। हर्षद मेहता, कृष्णमूर्ति की खबरें हैं। इस महल में शंकर गुहा नियोगी की जगह कहां? उनके कामों का भी क्या महत्व? लेकिन दिल्ली में जो लोग राज करते हैं उनकी राजनीति आज जोर मार रही है। जीवित शंकर गुहा नियोगी ने जिसे ललकारा था, क्या मृत शंकर नियोगी उसे नेतृत्व दे सकेंगे?

शंकर गुहा के कुछ लेख जो आज प्रकाशित हुए हैं उनमें हैं: मनुष्य की तरह समाज भी समय के साथ जवान होता है, उसमें भी बुढ़ापा आता है। एक समाज की मृत्यु के बाद नए समाज का जन्म होता है। भारतीय समाज आज प्रौढ़त्व से गुजर रहा है।' यह सही है कि विकास कांल के हिमयुग की तरह इतिहास में आदर्श का हिमयुग आता है जब संसार बेसब्री से उद्दंडता का इंतजार करता है, जब बर्फ पिघलेगी और भगीरथ जटामुक्त गंगा को समतल में ले आएगा। क्या शंकर वही भगीरथ था? इसका जवाब भी आज नहीं है। उस दिन की बात याद आती है। दल्लि राजहरा की पहली सभा। खून और आंसू का संगम। भाषाहीन हजारों लोग उस दिन भी आशाहीन नहीं थे। पूर्व प्रधानमंत्री वीपी सिंह ने जब पूछा कि वे क्या मदद कर सकते हैं, एक ही जवाब आया: लड़ाई में साथ दीजिए। शंकर गुहा नियोगी मर गए, लेकिन लड़ाई नहीं मरनी चाहिए। और हाल ही भिलाई में सोलह श्रमिकों का बलिदान साबित करता है कि लड़ाई मरी नहीं। दमन लोगों को दबा नहीं सका। यह कौन सा तंत्र है जो कठिन संकट में भी संयम खोने नहीं देता, दुख में भी आशा और आत्मविश्वास को बरकरार रखता है? उससे भी बड़ी बात वह यदि दल्लि में काम कर सकती, तो दिल्ली में क्यों नहीं जहां चारों ओर आज संकट के बादल हैं?

जिस संक्रमण के रास्ते में बंगाल के दीनाजपुर जिले के धीरेश मध्यप्रदेश के गढ़ इलाके में शंकर गुहा नियोगी बने उस के हर कदम की अलग पहचान शायद आज संभव नहीं। लेकिन यह कुछ असंबद्ध घटनाओं की गाथा नहीं थी। उसमें भी एक योग सूत्र रहा, दिशा रही। देश के कम्युनिस्ट आंदोलन की तीन धाराओं से गुजर कर शंकर गुहा नियोगी एक चौथी धारा रहे। और यह धारा भी थी समन्वय की। हर प्रयोग के सकारात्मक पहलुओं को चुन कर एक नए मॉडल की रचना करना चाहते थे शंकर। और वह भी लौह खदानों के बीच मिट्टी पर और भारत के सबसे कमजोर बिलासपुरी समाज को लेकर। यह मॉडल दो पैर पर खड़ा था। एक संघर्ष, दूसरा निर्माण। श्रमिकों की मजबूरी की लड़ाई, बेरोजगारों की रोजी की लड़ाई, पूंजीपतियों के शोषण के विरोध की लड़ाई, सरकार व दबंग वर्ग के दमन के विरुद्ध लड़ाई आदि के साथ जुड़ गया अस्पताल, स्कूल, सहयोग समिति, पर्यावरण स्तर का रचनात्मक कार्यक्रम। व्यस्त रहते हुए भी शंकर कभी अध्ययन से दूर नहीं रहे और कोई विकल्प तैयार नहीं कर बगावत में उतरते नहीं। विदेश से मशीन लाकर आधुनिकीकरण के नाम पर जब ८००० मजदूरों की छटनी की योजना बनी तब लौह खदानों में शंकर ने बगावत के बिगुल फूंके थे लेकिन साथ ही साथ भारत की स्थिति में उपयोगी मशीन और श्रमशक्ति को मिला कर एक 'सेमी मेकेनाइजेशन' का विकल्प भी पेश किया था। मशीनीकरणं के समाज को शंकर एक वर्ग दृष्टिकोण के साथ देखते थे। मशीनीकरण या तथाकथित आधुनिकीकरण कोई रोजगार सिर्फ संकुचित नहीं करता है एक विशेष वर्ग के हाथ से रोजगार भी छीनता है। और वह वर्ग है समाज का कमजोर वर्ग, हरिजन, आदिवासी, महिला। इसलिए मशीन आधारित आधुनिक खदान या कारखाने में हरिजन, आदिवासी व महिला की संख्या नहीं के बराबर रहती है। विकास का यह रास्ता कितना सही है जो दुर्बल को और दुर्बल बना देता है?

बहुमुखी कर्मकांड के बीच में भी जिस मूल दिशा से शंकर गुहा नियोगी कभी भटक गए वह है मजदूर वर्ग का नेतृत्व और भारतीय समाज में मार्क्सवाद की स्थापना। आज प्रतिष्ठित ट्रेड यूनियनों में भी मजदूर वर्ग का नेतृत्व नहीं है, न नेतृत्व की ही पकड़ है मजदूर वर्ग पर। मार्क्सवादी दर्शन भी अभी तक बांबू संस्कृति के बेड़ा मार कर सही जमीन में जड़ घुसा नहीं पाया। संक्षेप में शंकार का लक्ष्य था मार्क्सवाद का भारतीयकरण जिसकी जरूरत इतने दिनों के बाद सीपीआई ने अपनी दलील में स्वीकार की है। इस संदर्भ में संघर्ष और निर्माण का कार्यक्रम वर्ग संघर्ष और सांस्कृतिक क्रांति का ही एक रूप था। चीन में जो चीज माओ ने क्रांति के बाद की थी, जात, पात, धर्म में विभाजित भारत में उसी क्रांति की जरूरत है। सामाजिक सुधार एक सांस्कृतिक क्रांति है यदि वह समाजवादी विचारों के साथ मजदूर वर्ग के नेतृत्व में संचालित रहे। यूनियन इसलिए शंकर गुहा नियोगी के लिए राहत व सुविधा देने की दुकान नहीं, ज्ञान व चेतना देने का स्कूल था। मजदूर वर्ग समाज को बदल डालने की शक्ति है और यूनियन का काम है उसे उस काम में तैयार करना। एक रचना में शंकर गुहा नियोगी ने लिखा था अर्थवाद का अंधकार नहीं। आर्थिक लड़ाई के साथ सामाजिक मुक्ति की रोशनी चाहिए। चाहिए स्वाभिमानी मजदूर वर्ग की प्रतिष्ठा जो वोट के लिए तिरंगा और पेट के लिए लाल झंडे की अवसरवादिता से मुक्त होंगे।' और इसी के अंदर से पनपेगा क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन जिसकी एक छवि छत्तीसगढ़ माइंस श्रमिक संघ (सीएमएसए) की राय में दल्लि राजहरा में हमें मिलती है। यहां पर भी शंकर इस सब के लिए एक मॉडल छोड़ गए हैं जो भारत की किसी भी यूनियन से अलग लेकिन सभी यूनियनों के लिए शिक्षनीय है।

शंकर गुहा नियोगी के अनुसार क्रांतिकारी ट्रेड यूनियन के लिए पहले जरूरत नेतृत्व की एक समग्र दृष्टि की है। समाज में बदलाव लाना ही यदि ट्रेड यूनियन आंदोलन का लक्ष्य है तो समाज के तमाम अंतरद्वंद्व के बारे में एक ठोस जानकारी व हर स्तर में उनकी एक भूमिका चाहिए। किसी भी समाज का छोटा पहलू भी कभी बड़ा बनकर खड़ा हो जाता है। भारत में क्रांति का सवाल कोई एकांकी नाटक नहीं, इसलिए एकांकी दृष्टिकोण लेकर इस विशाल समाज की जटिल प्रक्रियाओं को समझना संभव नहीं है। भारत की तरह उपनिवेशोत्तर देशों में जहां भ्रष्टाचार का बोलबाला है। वहां नैतिक क्रांति भी एक विशेष महत्व रखती है। इसलिए आर्थिक लड़ाई के साथ शंकर ने शराबबंदी की लड़ाई शुरू की थी जिसने इलाके के तमाम ठेकेदारों को उनका दुश्मन बना दिया। इतना ही नहीं, जहां सामाजिक व क्षेत्रीय विकास की असमानता आर्थिक व राजनैतिक शोषण की जड़ है वहां उसके विरोध में भी लड़ाई में मजदूर वर्ग की अगुआई करनी है। इसीलिए लौह खदानों के मजदूरों के नेतृत्व में छत्तीसगढ़ के पिछड़े समाज की आत्म प्रतिष्ठा व स्वायत्तता के सवाल पर भिलाई में छत्तीसगढ़ मुक्ति मोर्चा बना। इस में वर्ग संघर्ष के साथ सामाजिक उत्थान का संघर्ष मिला तो भोपाल में भूचाल पैदा हुआ। दल्लि राजहरा में ट्रेड यूनियन का जो मॉडल शंकर गुहा नियोगी ने बनाया वह मजदूरों को सिर्फ मांगना नहीं सिखाता कुछ करने के लिए भी प्रेरित करता है। मजदूर वर्ग को राज में लाओ सभी बीमारियों का इलाज हो जाएगा। सिर्फ इतना ही नहीं। दल्लि राजहरा के यूनियन इतिहास की भी खोज शुरू की और प्रकाश में आई अंग्रेजों के विरुद्ध छत्तीसगढ़ के वीर नारायण सिंह की लड़ाई और शहादत। आज वीर नारायण सिंह महान शहीद के रूप में सरकार द्वारा भी स्वीकृत हैं, जिनकी प्रतिमा भी स्थापित हुई। शहादत दिवस में माला चढ़ाने के लिए भोपाल से मुख्यमंत्री भिलाई आ जाते हैं। लेकिन इस महान इतिहास का आविष्कार किसी विश्वविद्यालय के विद्वानों ने नहीं किया एक खदान मजदूरों की यूनियन ने किया।

शंकर गुहा नियोगी के विचार में दारू के व्यापार, मशीनीकरण, बहुराष्ट्रीय कंपनियों की घुसपैठ के बीच एक संबंध है और इसके साथ यदि पांच सितारा होटल का उपभोक्तावाद जुड़ जाए तो भारत आजादी खो बैठेगा। आज जिस स्थिति पर हम पहुंच रहे हैं जहां खुल्लम खुल्ला कहा जा रहा है कि गुलामी से गरीबी दूर हो सकती है। विदेशी पूंजी आज विदेशमुखी मानसिकता की जड़ है जो सिर्फ भ्रष्टाचार को ही फैला कर समाज को प्रदूषित नहीं कर रही है, बल्कि देशभक्ति को नष्ट कर राष्ट्र को ही खतरे में डाल देती है। इस दिशा की ही देन है सांप्रदायिकता, अलगाववाद, उग्रवाद और यह कोई आकस्मिक संयोग नहीं कि अमृतसर के स्वर्ण मंदिर में अमेरिकी राजदूत को आमंत्रित करने के वक्त कहा गया था कि अमेरिका को खालिस्तान का समर्थन करना चाहिए क्योंकि खालिस्तान में विदेशी पूंजी निर्बाध खेल पाएगी। शंकर गुहा नियोगी लोक संस्कृति को पूर्ण जीवित कर विदेशी अपसंस्कृति को रोकने के लिए मजदूर वर्ग को संगठित कर रहे थे। अंग्रेजी स्कूल, टाई और मिनी स्कर्ट को 'मम्मी, डैडी, आंटी' अपसंस्कृति, 'डिसुम डिसुम' नाच के अंदर से जो बौद्धिक अफीम इस देश में आयात हो रहा है वह सबसे बड़ा दुश्मन आज मजदूर वर्ग के भी अंदर घुस रहा है। इस नैतिक भ्रष्टाचार को शंकर ने कभी क्षमा नहीं किया। चरित्रहीन समाज समाजवाद को धारण कर रख नहीं सकता और आजादी को भी बचा नहीं सकता। इसलिए विदेशी पूंजी, पांच तारा होटल, आदि द्वारा समाज को चरित्रहीन करने में लगे हुए हैं, वे रूस में हो या भारत में।

शंकर गुहा नियोगी एक गांधीवादी थे, या नक्सलवादी या दत्ता सांमत की तरह सिर्फ एक व्यक्तिवादी श्रमिक नेता? परंपरागत कसौटी से इसका जवाब आसान नहीं। यहां पर भी शंकर भारत की राजनीति में एक चुनौती बन कर रहे। लेकिन सबसे बड़ा सवाल जो वे छोड़ कर गए वह है क्या गांधीवादी आचार के साथ मार्क्सवादी विचार का समन्वय संभव है। शंकर ने एक ही मंच पर गांधीवादी, नक्सलवादी, समाजवादी, पर्यावरणवादी सभी को बैठा कर साबित कर दिया कि यह संभव है। यह विशाल समन्वय भारत की राजनीति में शंकर की अनोखी देन है। दक्षिण और वाम के विभाजन के पहले अच्छाई और बुराई का विभाजन चाहिए जिसने भारत की राजनीति में मिलावट की एक नई समस्या पैदा की। जनमुखी, सहयोगमुखी दिशा एक ओर। सत्तामुखी, धनमुखी, स्वार्थमुखी दिशा दूसरी ओर। इन दोनों में से चुनना है और इसमें ही शंकर ने सभी को दुश्मन बना दिया। सभी से लड़ना पड़ा। कितनी यूनियनें भिलाई में रहीं। सभी ने विरोध किया जीवन भर शंकर को लड़ना पड़ा। सभी सरकारों से, सभी पार्टियों से। लेकिन कोई उनको पराजित नहीं कर पाए। मृत्यु के बाद भी शंकर गुहा नियोगी अपराजित हैं जिसने दल्लि राजहरा की छोटी सी प्रयोगशाला को बदलाव की सही राजनीति की नई दिल्ली में बदल दिया।

Hindustan 31.3.98

# भगत सिंह का भारत फिर संकट में

**ए.के. राय**

चारों ओर चुनाव और सत्ता की लड़ाई के बीच वह इतिहास याद से ही उतर गया। वह था आज की स्वतंत्रता का इतिहास। उस इतिहास की संरचना में एक जमाने में देश के नेताओं ने जेल में रहकर भारत की खोज की थी। वह इतिहास था न्याय का, बलिदान का, एकता का। आज के भारत में वह इतिहास खो गया है। आज एक नये इतिहास की रचना जारी है। वह होगा लूट का, भोग का, बिखराव का। जहां इतिहास खो जाता है वहां भविष्य नहीं बन सकता। आज के तमाम संकटों की जड़ इसी में है। चुनाव के बाद भी देश पर अस्थिरता के काले बादल मंडरा रहे हैं। आज इसलिए नये रूप में पुराने इतिहास की खोज शुरू हुई है। और इस इतिहास के केन्द्र में हैं भगत सिंह, जो अपनी शहादत के साथ एक सिद्धांत भी छोड़ गये, जो आज के लिए भी सही है। इसलिए शहीद भगतसिंह, जीवित भगत सिंह से बहुत ज्यादा ताकतवर हैं। तथा हर रोज और ज्यादा प्रासंगिक बन रहे हैं। वैसे भी भारत का स्वतंत्रता संग्राम कभी भी सत्ता हथियाने का संग्राम नहीं, बल्कि शुरू से ही एक मुक्ति संग्राम था। विदेशी हुकूमत के अवसान के साथ भारतीय समाज के उत्थान तथा विकास का सवाल हमेशा ही उससे जुड़ा रहा। 1930 की 26 जनवरी को जब रावी नदी के तट पर पहली बार पूर्ण स्वतंत्रता का संकल्प लिया गया था, उसमें भी आजादी का अर्थ कुछ लोगों के लिए कुर्सी नहीं बल्कि आम भारतवासियों के लिए नयी जिंदगी के रूप में आंका गया था। 1931 के कराची कांग्रेस में उसके साथ एक ठोस आर्थिक कार्यक्रम जुड़ गया। देशभक्ति, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद का आदर्श इस क्रम में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के अंग के रूप में पनपा था। इस आदर्श का सिर्फ एक प्रमुख प्रवक्ता ही नहीं, एक संपूर्ण प्रतीक थे भगत सिंह। आज जैसे सब कुछ बदल गया है। विदेश भक्ति, सांप्रदायिकता और पूंजीवाद अब हमारा आदर्श है। गैट समझौता से आजादी भी खतरे में और नयी आर्थिक नीति के तहत देश के उद्योग बंद हो रहे हैं और सीमा शुल्क घटाकर संपन्न लोगों के लिए विदेशी सामान आ रहे हैं। 'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत है' भगत सिंह ने दिल्ली एसेंबली में बम गिराते हुए ये शब्द कहे थे। यह वह धमाका था जिसने देश के चारों ओर क्रांति का संदेश फैलाया था। क्या आज लुढ़कते हुए देश को सही पटरी पर बिठाने के लिए फिर एक धमाके की जरूरत है और इसलिए चारों ओर भगत सिंह की खोज है?

1907 से 1931। सिर्फ 24 साल का एक संक्षिप्त जीवन। इसमें भी अंतिम दो साल जेल में ही। 1925 में 18 साल की उम्र में भगत सिंह ने भारत नौजवान सभा की स्थापना की। 1927 में हिन्दुस्तान रिपब्लिकन एसोसिएशन। 1928 में उस नाम के साथ सोशलिस्ट शब्द जोड़ा। शायद भारत में किसी राजनैतिक संगठन में सोशलिस्ट शब्द का यह पहला व्यवहार था। 1928 भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण वर्ष। इसी साल साइमन कमीशन का बहिष्कार सारे भारत में हुआ। भारत की आजादी के सवाल पर बने उस कमीशन में एक भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था। 30 अक्तूबर, 1928 को लाहौर में साइमन कमीशन के विरोध प्रदर्शन में लाला लाजपत राय पर बर्बरतापूर्वक लाठी बरसायी गयी, जिस कारण 13 नवंबर को उनकी मृत्यु हुई। क्रांतिकारियों ने भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में 19 दिसंबर को अंग्रेज पुलिस अफसर सैंडर्स को गोली से उड़ाकर इसका बदला लिया। लेकिन इन तमाम कर्मकांड के दौरान भगत सिंह की कलम बंद नहीं रही। भारत की स्वतंत्रता के मुख्य बाधक के रूप में सांप्रदायिकता को चिन्हित करने में वे भिड़े रहे। उसी साल लाहौर में सांप्रदायिक दंगा हुआ था। इस पर उन्होंने दो निबंध लिखे थे। भगत सिंह के चरित्र का एक विरल पहलू यह था कि किन्हीं भावनाओं में बहकर क्रांतिकारी नहीं बने थे, जो उस वक्त तथा उस उम्र में स्वाभाविक था। वैज्ञानिक चेतना तथा स्पष्ट विचार हमेशा उनका दिशा-निर्देशक रहा। इसलिए भगत सिंह सिर्फ अतीत के प्रतीक नहीं हैं, वे भविष्य के प्रतीक भी हैं। सिर्फ शहीद नहीं, शहीद-ए-आजम।

मई 1928 में, जब उनकी उम्र सिर्फ 21 साल थी, भगत सिंह ने 'धर्म और हमारा स्वतंत्रता संग्राम' शीर्षक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने कहा, 'हमारी आजादी का अर्थ केवल अंग्रेजी हुकूमत से छुटकारा प्राप्त करना नहीं, बल्कि वह पूर्ण स्वतंत्रता का नाम है, जब लोग परस्पर घुलमिल कर रहेंगे और दिमागी गुलामी से आजाद हो जायेंगे। धर्म संबंधी विचारों का भारत की पृष्ठभूमि में उन्होंने जो विश्लेषण किया था, वह आज भी किसी समाज विज्ञानी को शिक्षा दे सकता है। जून 1928 में भगत सिंह ने एक और लेख 'सांप्रदायिक दंगे और उनका इनाम' में अपने विचारों को और विस्तारित कर कहा, 'यदि इन सांप्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो उनका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है। जहां तक देखा गया है कि इन सांप्रदायिक दंगों के पीछे सांप्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है और उसकी जड़ आर्थिक है। लगता है मानो यह लेख हाल में अयोध्या कांड के बाद लिखा गया है। इस संदर्भ में रूस के इतिहास की ओर ध्यान खींचते हुए उन्होंने लिखा था, जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के यहां भी ऐसी ही स्थितियां थीं। लेकिन जिस दिन से वहां सोवियत व्यवस्था कायम हुई, नक्शा ही बदल गया। वहां कभी दंगे नहीं हुए। अब वहां सभी को इंसान समझा जाता है, धर्मजन नहीं। भगत सिंह के विचार आज सोवियत संघ भंग होने के बाद वहां सांप्रदायिकता, नस्लवाद, अलगाववाद की वापसी को देखते हुए और भी सही प्रमाणित हो रहा है। सांप्रदायिक भाईचारे के साथ मजदूर वर्ग के नेतृत्व तथा साम्राज्यवाद का जो अभिन्न संबंध भगत सिंह ने उस समय स्पष्ट रूप में रखा था, वह आज भी देश के तथाकथित मार्क्सवादियों के लिए अनुकरणीय है जो स्पष्ट रूप में इस सच्चाई को कहने पर हिचकते हैं। उनकी भाषा में वर्ग चेतना ही वह सुंदर रास्ता है, जो सांप्रदायिक रास्ते को रोक सकता है।

आज धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा पर ही बहस हो रही है। कोई सर्वधर्म समभाव कहता है तो कोई धर्म को सार्वजनिक जीवन या राजनीति से अलग करना चाहता है। देश के वर्तमान शासक पहले विचार के पक्षधर हैं। संविधान की धारा 25 की व्याख्या भी उसी रूप में की जाती है। सौ धर्मों के समन्वय की प्रक्रिया में सौ धर्म लड़ रहे हैं और सरकार रेफरी का काम कर रही है। अयोध्या में लंकाकांड उसी की देन है। भगत सिंह तथा उस युग का विचार इस संदर्भ में साफ था। गदर पार्टी जैसे आंदोलन का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा, 914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था। वे समझते थे कि धर्म व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का दखल उचित नहीं है, न ही इसे राजनीति में घुसाना चाहिए। इसलिए गदर पार्टी जैसे आंदोलन एकजुट, एक जान रहे, जिसमें सिख बढ़ चढ़कर फांसी पर चढ़े और हिन्दू मुसलमान भी पीछे नहीं रहे। आज धर्म को राजनीति में मिलाने का ही नतीजा है कि कनाडा में गदर पार्टी नहीं खालिस्तानी पनप रहे हैं।

> **देशभक्ति, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद का आदर्श इस क्रम में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के अंग के रूप में पनपा था। इस आदर्श का सिर्फ एक प्रमुख प्रवक्ता ही नहीं, एक संपूर्ण प्रतीक थे भगत सिंह। आज जैसे सब कुछ बदल गया है। विदेश भक्ति, सांप्रदायिकता और पूंजीवाद अब हमारा आदर्श है। गैट समझौता से आजादी भी खतरे में और नयी आर्थिक नीति के तहत देश के उद्योग बंद हो रहे हैं और सीमा शुल्क घटाकर संपन्न लोगों के लिए विदेशी सामान आ रहे हैं। 'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत है' भगत सिंह ने दिल्ली एसेंबली में जो बम गिराते हुए ये शब्द कहे थे। यह वह धमाका था जिसने देश के चारों ओर क्रांति का संदेश फैलाया था। क्या आज लुढ़कते हुए देश को सही पटरी पर बिठाने के लिए फिर एक धमाके की जरूरत है और इसलिए चारों ओर भगत सिंह की खोज है?**

बाबरी मस्जिद ध्वस्त करने के पहले आर एस एस ने चारों ओर नारा लिखा था, गर्व से कहो हम हिन्दू हैं। इसके जवाब में देश के धर्मनिरपेक्ष तत्व न कोई नारा बना पाये, न कोई कार्यक्रम। फलस्वरूप सांप्रदायिकता आक्रामक और धर्मनिरपेक्षता आत्मरक्षात्मक राजनीति बनी, जो वामपंथियों की दिशाहीनता की देन है और यह स्वाभाविक भी है। कम्युनिस्ट लोग तो पहले ही भद्रपुरुष बन गये हैं, मार्क्सवादी लोग भी अपने संगठनों को जनवादी नाम से पुकारने लगे हैं और समाजवादी लोग 'सोशलिस्ट' शब्द को बहुत पहले ही मुलायम कर अपने राजनीतिक एजेंडे से अलग कर चुके हैं। लेकिन भगत सिंह अपने राजनैतिक विचारों के मामले में बहुत स्पष्ट थे। देश की तमाम गड़बड़ी के लिए शोषणयुक्त व्यवस्था को जिम्मेवार ठहराते हुए उन्होंने लिखा था, उत्पादक तथा मेहनतकश वर्ग समाज के सबसे आवश्यक तत्व होते हुए भी इनके अधिकार तथा उनकी मेहनत की फसल को शोषक परजीवी वर्ग लूट लेते हैं। इसलिए जो लोग समाज का बुनियादी परिवर्तन चाहते हैं, उन्हें समाजवादी दिशा में पुनर्रचना में पहल करनी होगी और वह भी कार्ल मार्क्स के वैज्ञानिक दर्शन के आधार पर। 4 अप्रैल, 1929 जब भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली एसेंबली में बम गिराये थे, तब वहां मजदूर वर्ग को नयी जंजीर में बांधने के लिए ट्रेड डिस्प्युट एक्ट नाम से एक कानून पारित हो रहा था। आज 69 साल बाद अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष और विश्व बैंक के दबाव में उससे भी खतरनाक मजदूर विरोधी कानून को मंजूरी दी जायेगी। भारत का मजदूर वर्ग भी इसीलिए आज भगत सिंह को खोजेगा।

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च, 1931 को फांसी हुई। कराची कांग्रेस के ठीक पहले इस खबर ने देशवासियों के अंदर तीव्र रोष पैदा किया था। नेताजी सुभाष ने इसका भावपूर्ण वर्णन अपनी किताब 'दि इंडियन स्ट्रगल' में किया है। इसके कुछ ही दिन पहले 18 मार्च, 1931 को गांधी इर्विन समझौते द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस हुआ था। सुभाष चंद्र बोस तथा उनके साथियों ने गांधीजी पर दबाव डाला था कि भगत सिंह तथा उनके साथी सुखदेव, राजगुरु की फांसी की सजा रद्द किये बगैर आंदोलन वापस नहीं होना चाहिए। एसेंबली में बम गिराने के समय भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त गिरफ्तार हुए थे। उस केस में दोनों को आजीवन कारावास की सजा हुई। लेकिन इसके बाद भगत सिंह पर सैंडर्स हत्या का मुकदमा चलाया गया जिसमें उनको फांसी की सजा हुई। अर्थात 4 अप्रैल, 1929 से 23 मार्च, 1931 तक लगातार जेल में रहे। लेकिन उस समय भी वे भारत की आजादी तथा क्रांति के संदर्भ में धर्म और राजनीति के पेचीदे सवालों को भूले नहीं। मौत के पहले महान नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं, लेकिन भगत सिंह ने फांसी के 5 माह पूर्व 6 अक्तूबर 1930 को लिखा था 'मैं नास्तिक क्यों हूं? धर्म के ठेकेदारों को उन्होंने चुनौती देते हुए पूछा, मैं पूछता हूं कि जब कोई आदमी पाप या अपराध करना चाहता है, तो आपका सर्वशक्तिमान ईश्वर उसे रोकता क्यों नही? वह अंग्रेजों के मन में ऐसी भावना क्यों नहीं पैदा कर देता है कि वे हिन्दुस्तान को आजाद कर दें? वह तमाम पूंजीपतियों के दिल में परोपकार का ऐसा विचार क्यों नहीं भर देता है कि उत्पादनों के साधनों पर से अपने स्वामित्व के अधिकार को त्याग दें। आज समाजवाद के सिद्धांत की व्यावहारिकता पर बहस करना चाहते हैं, चलिये मैं यह आपके सर्वशक्तिमान पर डालता हूं कि उसे व्यावहारिक बना दे... क्या यह आप मुझसे जानना चाहते हैं कि यदि ईश्वर को नहीं मानता तो दुनिया एक इंसान को कहां से पैदा हुआ मानता हूं। यह प्राकृतिक घटना है। विभिन्न पदार्थों के आकस्मिक संयोग से उत्पन्न निहारिका से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई। इसी प्रकार जीवधारी उत्पन्न हुए और उनसे ही लंबे अरसे के बाद मनुष्य का विकास हुआ। डार्विन की पुस्तक जीव की उत्पत्ति पढ़िये। यह रचना कोई पुस्तकालय के ठंडे घर में बैठ के नहीं लिखी गयी थी, फांसी के सेल में मौत के कुछ दिन पहले लिखी गयी थी। अपने जीवन का अंत हो रहा है, तब भारतवासियों को अंधविश्वास से मुक्त करने के लिए भगत सिंह ने वैज्ञानिक विचारों के प्रति उनका ध्यान आकृष्ट किया है। वह मानसिक शक्ति, संतुलन तथा अपने विचारों के प्रति समर्पित और अडिग रहने की एक अनोखी मिसाल है।

आज के आतंकवादियों के विपरीत उस जमाने के तमाम क्रांतिकारी हथियार बंद लड़ाई में विश्वास रखते हुए भी एक महान मानवतावादी थे। सैंडर्स की हत्या के बाद लाहौर की दीवारों पर लाल स्याही से छपे इश्तिहार में कहा गया था, हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें हर व्यक्ति को पूर्ण शांति और स्वतंत्रता का अवसर मिल सके।

हम इंसान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुखी हैं। लेकिन क्रांति के द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मुनष्य पर मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए कुछ रक्तपात अनिवार्य है। कितना अंतर है आज के आतंकवादियों और उन क्रांतिकारियों के विचारों में, जो आये दिन बम विस्फोटों द्वारा आम लोगों को मार रहे हैं।

भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु को फांसी समय के पहले ही अचानक हुई थी। उस समय आई सी एस तथा बाद में मास्को में भारत के राजदूत के.पी. मेनन ने एक लेख में उल्लेख किया था कि अंतिम बुलाहट के वक्त भगत सिंह किताब पढ़ रहे थे। लेनिन का 'राज्य व क्रांति'। प्रहरी को उन्होंने कहा 'रुको, अभी एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी के साथ बात कर रहा है।' प्रहरी तो तब रुका नहीं, लेकिन इतिहास आज अचानक रुक कर उस ओर ताक रहा है।

आज जब देश लगातार त्रिशंकु संसदों के साथ एक स्थायी राजनैतिक अस्थिरता का शिकार है, ऊपर से मंदिर-मस्जिद विवाद तथा सांप्रदायिक या जातिवादी हिंसा के बादल मंडरा रहे हैं, जब डंकल प्रस्ताव और नयी आर्थिक नीति पूंजीवादी रास्ते पर देश को दुबारा गुलाम बनाने की ओर धकेल रही है, जब टीवी अपसंस्कृति और मानसिक गुलामी तमाम राष्ट्रीय भावना तथा नैतिक मूल्यों को नष्ट करने पर तुले हुए हैं, जब दुनिया में देश घोटाले के नाम पर परिचित हो रहा है, जब देश के दलित, श्रमिक शोषण जन्म से तबाह हैं। जहांनाबाद की तरह नरसंहार हो रहा है, और परजीवी दो नंबरी कमाई से गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी तक देश की अखंडता खतरे में है, तब देश फिर भगत सिंह तथा उनके साथियों को याद करेगा तथा उनके देशभक्ति, धर्मनिरपेक्षता तथा समाजवाद के पैगाम को भी जो रावी से काबेरी तक आज भी गूंज रहे हैं।

क्या आज इसी के लिए चारों ओर नये सिरे से भगत सिंह की खोज है?

## सहस्राब्दी का संकेत

# आनेवाली सदी समाजवाद की होगी

एके राय

एक वर्ष, एक शताब्दी, एक सहस्राब्दी का अंत. सभी पीछे की ओर मुड़ कर बीती हुई घटनाओं के मूल्यांकन में व्यस्त. आशा-निराशा के बीच एक युग ने विदा ली. एक नयी सदी सामने है, जिसमें हम प्रवेश कर चुके हैं. यह एक संगम है, जो बिरले ही किसी को देखने को मिलता है. नयी सदी कैसी होगी, इसका भी आकलन जारी है. लेकिन सबसे बड़ी बात, जो सभी के दिमाग में मंडरा रही है, वह यह है कि जो सहस्राब्दी बीत गयी, क्या वह आनेवाले दिनों के लिए कोई संदेश छोड़ कर गयी है? यदि हां, तो वह संदेश क्या है, जिसको लेकर हम नयी सदी को दिशा देने के लिए आगे बढ़ेंगे और एक नये युग का निर्माण होगा?

*विश्व इतिहास की झलक* में नेहरूजी ने लिखा था कि जो लोग शांतिमय जीवन बिताना चाहते हैं, उन्होंने जन्म लेने के लिए एक गलत समय चुना है. यह निश्चित है कि 20 वीं सदी एक विशाल उथल-पुथल का काल रहा. वह उत्थान-पतन की साक्षी रही. दो-दो महायुद्ध हुए. कितने लोग मारे गये. कितने राष्ट्रों का अंत और उदय हुआ. रूस में क्रांति के जरिये (1917) समाजवादी व्यवस्था की प्रतिष्ठा हुई. मजदूर-किसान का राज जमीन पर साकार हुआ. चीन में क्रांति हुई, जिसने संपूर्ण एशिया में एक नयी हलचल पैदा की. विशाल औपनिवेशिक जगत, जिसके शोषण के जरिये पश्चिमी दुनिया चमचमाती थी, का भी अंत इस सदी ने देखा. कितने मुक्ति युद्धों की यह गवाह रही. जिसके अंदर क्यूबा का मुक्ति युद्ध (1957-60) और वियतनाम का मुक्ति युद्ध (1964-74) ने उस युग पर एक निर्णायक असर डाला. औपनिवेशिक जगत के विघटन से नये-नये स्वतंत्र देशों का जन्म हुआ, जिसके अंदर स्वतंत्र भारत का उदय (1947) सबसे प्रमुख घटना है.

इस प्रकार 20वीं सदी में एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमेरिका के देश- समूह 19वीं का नागपाश तोड़ कर सामने आये. वह एक निर्णायक संघर्ष का काल था, जिसने इतिहास को बनाया था. समय जैसे घोड़े पर सवार था. दुनिया बदल रही थी, तेजी से. नयी व्यवस्था, नये आदर्श के साथ उभर रही थी. साम्राज्यवाद टूटा. क्रांति के संदेश के साथ समाजवादी दुनिया सामने आयी. नयी दिशा के साथ एक नयी यात्रा शुरू हुई. सदियों से विभिन्न नेता, धर्मगुरु और दार्शनिक आदि ने भय और अभाव से मुक्त मानव और व्यवस्था की जो कल्पना की थी, लगता था, वह दिन सामने है. भारत में भी स्वतंत्रता के बाद सदाचार, स्वनिर्भरता और समाजवाद के आदर्श के साथ योजना आधारित अर्थव्यवस्था शुरू हुई. गांधीजी, नेहरू, नेताजी, भगत सिंह आदि ने शोषण, जुल्म व कदाचार से मुक्त महान भारत का जो सपना देखा था, उसका निर्माण का काल था वह. वह था 20वीं सदी का मध्याह्न, जब लोग सोचने लगे कि बंधन-मुक्ति का दिन आसन्न है. लेकिन वह सोच जल्दीबाजी का सोच था और शायद ज्यादा उत्साहपूर्ण भी. लहर की तरह इतिहास भी ऊपर उठ कर जैसे फिर नीचे चला गया. जहां समाजवादी क्रांति हुई थी, वहां पूंजीवादी प्रतिक्रांति हुई. इसमें पूर्वी यूरोप और सोवियत रूस का विघटन (1990-91) 20वीं सदी के अंतिम काल की सबसे उल्लेखनीय घटना है. इतिहास जैसे आगे की ओर छलांग देकर फिर उसी जगह लौट गया, जहां से उसने शुरू किया था. सामाजवाद की जगह बाजारवाद आया. समाज ही बाजार में बदल गया, जहां मानवीय मूल्यों की जगह भोग की वस्तु की कदर होने लगी. सब कुछ बिक्री पर. आदर्श, सिद्धांत, विचार कुछ नहीं. मानव-मानव में मैत्री और बिरादरी के कल्याण की जगह उग्रवाद, आतंकवाद आये. धार्मिक कट्टरता आदमी को काटने लगी. अंधविश्वास के साथ मनुष्यों को कमजोर करनेवाली अपसंस्कृति वापस आयी. नकली साधु- संत समाज पर हावी होने लगे. पढ़े-लिखे लोग टाई पहन कर कंप्यूटर के साथ गणेशजी को दूध पिलाने में तत्पर दिखायी देने लगे.

भारत सहित पूरे संसार में 20वीं सदी के अंत में पूर्वी हवा पर पश्चिमी हवा सवार हो गयी. ईस्ट इंडिया कंपनी की वंशज बड़ी-बड़ी बहुराष्ट्रीय कंपनियां विश्व व्यापार संगठन के जरिये फिर से नये रूप में औपनिवेशिक शोषण को वापस ला रही हैं. भारत की अर्थव्यवस्था पर इसकी काली छाया आज स्पष्ट है. एक जमाने में जो औद्योगिक प्रांगण रहा, वहां वीरानी दिखायी दे रही है. योजना को कमजोर कर बाजार आधारित नयी अर्थव्यवस्था विशाल कालाधन पैदा कर समाज एवं राजनेताओं को भी काला कर रही है. आध्यात्मिक मूल्यों का देश भारत आज -घोटालों के देश के रूप में विश्व में परिचित हो रहा है. सार्वजनिक क्षेत्र, जो स्वनिर्भर अर्थव्यवस्था की रीढ़ के रूप में बना था, वह आज पीछे मुड़ कर निजीकरण के रास्ते पर है. स्वदेशी के नाम.पर सत्ता में पहुंच कर देश का शासक वर्ग आम बजट भी विदेशियों के इशारे पर बना रहा है और विदेश मंत्री ज्यादा विदेश में ही घूमते रहते हैं. देश आज विनाश के कगार पर खड़ा है. इस रूप में देश का पहला सार्वजनिक उद्योग सिंदरी खाद कारखाना, जिसके उद्घाटन के समय (1951) प्रधानमंत्री नेहरू ने उसे भारत का नया मंदिर कहा था, आज खंडहर बन कर पड़ा हुआ है और हम विदेश से यूरिया आयात कर रहे हैं! एशिया का सबसे बड़ा इस्पात कारखाना बोकारो, जो कल तक हमारा गर्व था, आज बंदी के कगार पर खड़ा है, क्योंकि इस्पात भी बाहर से ही आयेगा. उसके पावर प्लांट अब एनरॉन जैसी बहुराष्ट्रीय कंपनी खरीदेगी. कोयला भारत में ऊर्जा का प्रमुख स्रोत है. इसी सदी में लोगों ने इसका राष्ट्रीयकरण देखा (1971-72). आज इसे फिर से मालिकों, माफियाओं के हाथों में लौटाने के लिए संसद में बिल लाया जा रहा है. पहले हम खाने के लिए गेहूं आयात करते थे, आज उसे पकाने के लिए हम कोयले का आयात करेंगे. बीमा और बैंक के क्षेत्र को भूमंडलीकरण के नाम पर विदेशियों के लिए खोल दिया गया है. 'ऋणं कृत्वा, पेपसी पीवेत' को ही सहस्राब्दी के अंतिम मंत्र और सुझाव के रूप में प्रचारित किया जा रहा है. बीती सहस्राब्दी के अंतिम काल के इस मोड़ का असर समाज तथा जीवन के हर पहलू पर पड़ा है. सिर्फ रूस में ही लेनिन की मूर्ति खतरे में नहीं है; भारत में गांधी की मूर्ति भी. कुछ दिन पहले मुंबई में डॉ भीमराव आंबेडकर की प्रतिमा को अपमानित किया गया. त्याग, बलिदान तथा कठोर श्रम का आदर्श, जिसे देश के निर्माण की सर्वश्रेष्ठ पूंजी के रूप में देखा जाता था, आज विदेशी पूंजी-निर्भर नयी आर्थिक नीति के तहत उपहास की वस्तु बन गयी है. आज राजनीति कोई मिशन नहीं, समाज विज्ञान नहीं, एक व्यापार है, जो बिना पूंजी के भी संभव है. धनपति आज गणपति है. माफिया- रंगदार नेता है. समाजवाद, साम्यवाद का आकर्षण नहीं. समुदायवाद, जातिवाद की जय-जयकार है. मानव मूल्यों की गिरावट के साथ-साथ विज्ञान तथा तकनीकी का दुरुपयोग शुरू हुआ है. नाना प्रकार के मारक अस्त्र-शस्त्रों का निर्माण हो रहा है. यहां तक कि मां के गर्भ में लड़का-लड़की की पहचान कर कन्या-भ्रूण की हत्या भी शुरू हो गयी है. उसी विज्ञान के सहारे, जो एक समय मानव जीवन को स्वस्थ, समाज को समृद्ध बनाने तथा नभमंडल को जय करने के लिए चांद पर पहुंचने के लिए प्रयुक्त होता था. बीती हुई सहस्राब्दी की सबसे बड़ी घटना- समाज का फैलाव, जिसके जरिये अमेरिका, लैटिन अमेरिका और ऑस्ट्रेलिया जैसे महादेश मानव सभ्यता का अंग बने.

जो पूंजीवादी विश्व आज बाजारवाद का विचार लेकर राज करना चाहता है, उससे पूंजीवादी विश्व का बुद्धिजीवी वर्ग भी सहमत नहीं है तथा उसके विपरीत समाजवादी विचारों के उद्गाताओं को ही सहस्राब्दी का सर्वक्षेष्ठ मानव माना है. अर्थात इतिहास का अंत नहीं हुआ है. 21वीं सदी में नया इतिहास बनेगा, जो समाजवाद- साम्यवाद का होगा, जहां धन तथा राज्य की जगह मानवीय मूल्यों का महत्व रहेगा.

क्या नयी सहस्राब्दी की सबसे बड़ी घटना नभमंडल में मानव का फैलाव हो सकती है? लेकिन सभी निर्भर हैं मानव मूल्यों पर, जो विज्ञान तथा उसकी प्रयुक्ति को दिशा-निर्देश करते हैं.

पूर्वी हवा के साथ जिस 20वीं सदी का उदय हुआ था, पश्चिमी हवा को हावी कर आज उसका अंत हो गया. क्या यही इस घटना बहुल सदी के तमाम कर्मकांडों का निचोड़ है? समाजवाद का पतन, साम्राज्यवाद की नये रूप में वापसी, स्वतंत्रता की जगह नयी गुलामी, मैत्री की जगह आतंकवाद (जो हाल में हवाई जहाज अपहरण कांड में हमने देखा), क्या बीती हुई सदी की अंतिम बात होगी. पूंजीवादी बुद्धिजीवी लोग अट्टहास के साथ एलान कर रहे हैं कि 'इतिहास का अंत' हो गया है. अब भोग और मौज का नया जमाना आ गया है, जहां आदर्शहीन विश्व ही आदर्श विश्व है. लेकिन जिस प्रश्न पर तमाम बुद्धिजीवी चुप हैं, वह यह है कि इस क्रम में हम आगे बढ़े या और पीछे ढकेले गये? समाजवादी रूस के विघटन के बाद पिछले नब्बे का दशक पश्चिमी पूंजीवादी दुनिया के एकछत्र राज का दशक रहा. आज हम एक ध्रुवीय विश्व के निवासी हैं. क्या किसी भी क्षेत्र में हम कोई भी प्रगति देख पाये?

रूस में समाजतंत्र की जगह पूंजीवादी व्यवस्था लाने के बाद उसकी पूरी अर्थव्यवस्था आज तहस-नहस हो गयी. कल की एक महाशक्ति आज अंतरराष्ट्रीय जगत में भीख मांग रही है. भारत की स्थिति भी उसी प्रकार है. विज्ञान की प्रगति के बावजूद सदी के अंतिम दशक में करीब 20 करोड़ लोग नये रूप में गरीबी रेखा के नीचे चले गये. मंदी, बंदी और बेरोजगारी ने आज पूंजीवादी विश्व में एक विशाल संकट पैदा किया है. और नैतिक स्तर में इस प्रकार गिरावट आयी कि आज बर्लिन की दीवार तोड़नेवाले तथा पूर्वी यूरोप की समाजवादी व्यवस्था को ध्वस्त करनेवाले जर्मनी के पूर्व चांसलर हेल्मुट कोल अपने देश के चुनाव में गलत रूप में धन लेने के घोटाले में अभियुक्त हैं. सोवियत संघ को विघटित करनेवाले येल्तसिन को सहस्राब्दी के अंतिम दिन इस्तीफा देकर अपनी व्यर्थता के लिए रूस की जनता से माफी मांगनी पड़ी और एक ध्रुवीय विश्व के नेता अमेरिका के राष्ट्रपति क्लिंटन को चरित्र के सवाल पर महाअभियोग का सामना पड़ा. विश्व भर में निरंकुश पूंजीवाद के परिणाम तथा उसकी असफलता ने आज उसके समर्थकों को भी चिं[illegible] में डाल दिया है. इसलिए शताब्दी के अंत में आशा की एक नयी किरण सामने आयी, इस 21वीं सदी के भविष्य के बारे में एक नया संकेत दे रही है.

विख्यात पश्चिमी संवाद एजेंसी 'रायटर' के सर्वेक्षण में सहस्राब्दी का सर्वश्रेष्ठ मानव चुनने के लिए विश्व के बुद्धिजीवियों का मत संग्रह किया गया था. सभी को आश्चर्यचकित करनेवाले इस चयन में विश्व भर में तीन महापुरुषों को सबसे ज्यादा समर्थन मिला- आइंस्टीन, गांधी और मार्क्स. यानी यह सदी इन तीन महापुरुषों को अपने उदाहरण के रूप में मानेगी. लेकिन ये तीन महापुरुष कौन-से विचार के प्रतीक थे? यह तो निर्विवाद ही है कि तीनों ही वर्तमान विश्व के भोगवादी- पूंजीवादी विचार के विरोधी थे. सहस्राब्दी के अंत में चयन का यह परिणाम पूंजीवादी विश्व की सबसे बड़ी पराजय है. इसका मतलब, बर्लिन की दीवार और सोवियत संघ के विघटन से कोई स्थायी लाभ नहीं हुआ, क्योंकि यह नयी सदी तीन महापुरुषों का अनुसरण करते हुए उनके विचारों को भी खोजेगी. मई 1949 में अमेरिकी पत्रिका *मंथली रिव्यू* में एक लेख 'समाजवाद क्यों' के जरिये महान वैज्ञानिक आइंस्टीन ने अपने को समाजवादी के रूप में घोषित करते हुए स्पष्ट रूप से यह कहा था कि पूंजीवादी विश्व का कोई भविष्य नहीं हो सकता. यह सही है कि गांधीजी का सर्वोदय और मार्क्स का समाजवाद एक नहीं है, लेकिन वह वाजपेयी और मनमोहन सिंह के बाजारवाद से कोसों दूर है. गांधीजी के जीवनी लेखक प्यारेलाल ने लिखा था- गांधी, मार्क्स के वर्ग संघर्ष एवं भौतिकवादी विचारों को छोड़ कर, उनके समाजवादी आदर्श का समर्थन करते थे. वैज्ञानिक समाजवादी दर्शन के जन्मदाता कार्ल मार्क्स को भी पिछले एक हजार के श्रेष्ठ मानव के रूप में चुना गया. इससे स्पष्ट है कि समाजवादी राज्यों का ध्वंस कर जो पूंजीवादी विश्व आज बाजारवाद का विचार लेकर राज करना चाहता है, उससे पूंजीवादी विश्व का बुद्धिजीवी वर्ग भी सहमत नहीं है तथा उसके विपरीत समाजवादी विचारों के उद्गाताओं को ही सहस्राब्दी का सर्वक्षेष्ठ मानव माना है. अर्थात इतिहास का अंत नहीं हुआ है. 21वीं सदी में नया इतिहास बनेगा, जो समाजवाद- साम्यवाद का होगा, जहां धन तथा राज्य की जगह मानवीय मूल्यों का महत्व रहेगा. इस संदर्भ में महाकवि रवींद्रनाथ का निम्नलिखित संदेश, जो उन्होंने अपने अंतिम लेख 'सभ्यता का संकट' में 14 मई 1941 में दिया था, याद करने योग्य है :

'जीवन के प्रथम भाग में मेरा विश्वास था कि सभ्यता दान ही यूरोप की आंतरिक संपत्ति है. आज जब जीवन से विदा होने का दिन समीप आ रहा है, मेरे इस विश्वास का दिवाला निकल चुका है. आज मेरी यही आशा है कि हमारी इस दारिद्र व लांछित कुटिया में कोई परित्राता जन्म ग्रहण करेगा... सभ्यता को देववाणी के साथ लाकर मनुष्य को मनुष्यत्व के चरम आश्वास की वार्ता सुनायेगा. अपराजित मानव अपनी खोई हुई मर्यादा फिर से प्राप्त करेगा. मनुष्यत्व के पराभव को अंतहीन, प्रतिकारहीन और चरम समझना मेरी दृष्टि में अपराध है.'

प्रभात खबर 18/8/09

# देश दिशाहीन हो गया है
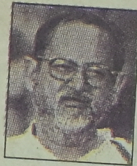
एके राय

हम कहां से शुरू कर कहां पहुंच रहे हैं. 26 जनवरी 1930 में पंजाब की रावी नदी के तट पर राष्ट्रीय नेताओं ने संकल्प लिया था, पूर्ण स्वतंत्रता का. ऐसे भारत की कल्पना थी, जहां हर आंख से आंसू पोंछे जाने की बात कही गयी थी. गरीबी, अशिक्षा, शोषण से मुक्त एक न्यायपूर्ण व्यवस्था में सभी लोग निर्भय होकर सुखी जीवन बिता पायेंगे, इस संकल्प के साथ जो यात्रा शुरू हुई थी, उसके पहले दौर का अंत हुआ था, 15 अगस्त, 1947 को. जब मध्य रात्रि में संसार सो गया, भारत जाग उठा और नवजात स्वतंत्र भारत के प्रधानमंत्री ने घोषणा की अतीत के तमाम वादों को वास्तव में साकार करने की. इसके बाद कितने दिन बीत गये. स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती भी हमने मनायी. इतिहास की याद दिलाने के लिए मध्य रात्रि में एक विशेष अधिवेशन बुलाया गया था. लेखा-जोखा भी हुआ बीते दिनों का. जैसे लगा हम पुराने संकट से पीछे नहीं हट रहे हैं.

26 जनवरी 1950 को स्वाधीन भारत ने गणतंत्र भारत के रूप में जन्म लिया. एक संविधान ग्रहण किया, जिसके उद्देशिका व नीति निर्देशक बल वाले अध्याय में उन तमाम मुद्दों को अंगीभूत कर लिया गया, जो स्वतंत्रता संग्राम का आधार रहा. रावी नदी के तट पर स्वतंत्रता संकल्प लेने और स्वतंत्रता दिवस पर उसे साकार करने का शपथ लेने के बाद आज कितने दिन बीत गये. हम रावी से कावेरी पहुंच गये. लेकिन उसकी पूर्ति की ओर क्या हम आगे बढ़ पाये? पंजाब की रावी पाकिस्तान में छूट गयी और भारत की कावेरी जल विवाद में पड़ गयी. आंख से आंसू कौन पोछेगा. देश के हर कोने में आज विवाद और आंसू हैं. राजनीति के आकाश पर भी बादल छाये हुए हैं. देश दिशाहीन हो गया है. चुनाव के बाद भी अनिश्चितता. देश की यात्रा में कहां गलती हुई कि हम चारों ओर अशुभ लक्षणों से घिर गये हैं.

शेष पेज 10 पर

पेज एक का शेष

## देश दिशाहीन...

चीन की एक कहानी है. कन्फ्यूसियस के शिष्य ने पूछा, एक देश के लिए किन तीन चीजों की जरूरत है. कन्फ्यूसियस ने जवाब दिया. सेना, अनाज और आस्था. शिष्य ने पूछा यदि तीनों नहीं मिले, तो किसको छोड़ा जा सकता. जवाब मिला, सेना को. लेकिन अनाज और आस्था चाहिए. शिष्य ने फिर पूछा, यदि दो भी नहीं मिले तो. कन्फ्यूसियस कुछ समय चुप रहे. इसके बाद कहा, अनाज को छोड़ा जा सकता है, लेकिन आस्था को नहीं. आस्था नहीं रहने से देश नहीं रह सकता. लेकिन आज देश में आस्था पर संकट आ गया है. पार्टी, नेता, सरकार किसी पर आस्था नहीं. सभी जानते हैं कि जनता को आजादी के समय दिखाये गये सपनों को पूरा करने के लिए हमें बहुत दूर जाना होगा और वक्त नहीं. भारत एक विशाल देश है और बहुत सारी समस्याएं भी हैं. सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक. कुछ विदेशियों ने दी, कुछ विरासत में मिली. इसलिए भारत का स्वतंत्रता संग्राम कभी सिर्फ सत्ता हथियाने की लड़ाई नहीं था, बल्कि एक मुक्ति और उत्थान की लड़ाई था. भारत की प्रति व्यक्ति आय अमेरिका का 48 वां भाग, इंग्लैंड का 25वां भाग व जापान का 29 वां भाग है. इस विशाल खाई को हम पाटेंगे कैसे. इसलिए सिर्फ चलना नहीं, दौड़ना होगा. विकास के हर स्तर को दोहराना संभव नहीं. बहुतों को लांघ कर पार करना होगा, इसलिए भारत का विकास अपने आप एक महान प्रयोग है. यह 110 करोड़ आबादी का देश है. सोवियत संघ के विघटन के बाद सात धनी देश- अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस, जापान आदि आज दुनिया के मालिक बने हुए हैं, जबकि उनकी आबादी से भारत की आबादी ज्यादा है. यहां विविध किस्म की नस्ल, भाषा, धर्म, संस्कृति है. सभी को लेकर एक साथ विकास के मार्ग पर चलना विशाल चुनौती है. पंचवर्षीय योजना शुरू करने के क्रम में पंडित नेहरू ने कहा था, पश्चिमी उन्नत देशों के विकास के समय यह जनवाद नहीं था. जब लोगों में राजनीतिक चेतना आती है, तभी लोग मांग करते हैं. आज लोग विकास चाहते हैं, लेकिन विकास की कीमत देना नहीं चाहते हैं. इसलिए एक ओर जल्दी चलना है और दूसरी और कष्ट सहने के लिए लोगों को समझा कर साथ में रखना है. इस दो विपरीत दिशाओं में सामंजस्य स्थापित कर एक सर्वमान्य रास्ता निकालना है. स्वतंत्रता आंदोलन में इसलिए एक रास्ता निकला भी था. वह रास्ता था लोकतंत्र, धर्मनिरपेक्षता, समाजवाद का. इसका आधार था योजना, सार्वजनिक क्षेत्र, मिश्रित अर्थनीति और प्राण रहा स्वदेशी और सदाचार. 1938 के 21 अगस्त को डॉ मेघनाद साहा के आमंत्रण पर इंडियन साइंस एसोसिएशन के सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने कहा था, 'भारत में राष्ट्रीय सरकार बनने के बाद पहला कार्यक्रम होगा एक राष्ट्रीय योजना परिषद बनाना.' ऐसा लगा कि पूर्ण स्वराज्य मिलने के पहले ही उस दिशा में काम शुरू कर दिया गया है. यहां स्मरणीय है कि 1938 में जब सुभाष चंद्र कांग्रेस के अध्यक्ष बने थे, तो पंडित नेहरू की अध्यक्षता में एक आर्थिक योजना परिषद बनी थी. 1927 में मास्को में रूसी क्रांति के 10 वें वार्षिक समारोह में नेहरू ने घोषणा की थी, आर्थिक योजना द्वारा यदि रूस गरीबी व निरक्षरता दूर कर सकता है, तो भारत के लिए भी वह उदाहरण लाभदायक होगा. विकास के लिए भारत इंग्लैंड, अमेरिका, फ्रांस का मार्ग नहीं ले सकता. हमारे पास 100 से 150 वर्ष देने का समय नहीं है. इस-उस रास्ते में बरबाद हो जायेंगे. अर्थात देर से जागे विकासशील देशों के लिए पर्याप्त पूंजीवादी देशों का लंबा रास्ता उपयोगी नहीं हो सकता. यह सही है कि गांधीजी का स्वराज और मार्क्स का समाजवाद एक नहीं है. लेकिन मनमोहन सिंह की आर्थिक नीति तो संपूर्ण विपरीत दिशा में है. स्वदेशी और उदारीकरण का यहां अर्थ विदेशीकरण से है. मनमोहन सिंह और गांधीजी में उतनी ही दूरी है, जितनी येल्तसिन और लेनिन में रही. इसलिए विकास के रास्ते के बारे में स्वतंत्रता संग्राम का एक दिशा निर्देश था. क्या हम उसे पालन कर रहे हैं? आज निश्चय ही इतिहास यह सवाल हमसे पूछेगा.

कुछ दिनों से सिर्फ भारत में ही नहीं, पूरे विश्व में पश्चिमी हवा पूर्वी हवा पर हावी है. विश्व इतिहास की झलक में नेहरू ने लिखा था कि जो लोग शांतिमय जीवन बिताना चाहते हैं, उन लोगों ने जन्म लेने के लिए एक गलत समय चुना है. तीसरी सदी का प्रथमार्द्ध एक उथल-पुथल का काल था, जिसने इतिहास को बनाया था. समय जैसे घोड़े पर सवार था. दुनिया बदल रही थी तेजी से. नयी व्यवस्था नये आदर्श के साथ उभर रही थी. साम्राज्यवाद धराशायी हुआ. शोषण मुक्त समाज एक वास्तविक संभावना बनी. दुनिया के वंचित-उपेक्षित लोगों में आशा जागी. भय और अभाव से मुक्ति का दिन आने लगा, लेकिन शायद वह उम्मीद बहुत जल्दीबाजी की थी और बहुत ज्यादा थी. लहर की तरह इतिहास भी ऊपर नीचे होता है. इसलिए जमाना ऊपर उठ कर जल्दी ही फिर नीचे आ गया. सभ्यता में मंदी आयी. मानव फिर बंदी बने. चीजें टूटने लगीं. भारत में स्वदेशी, रूस में समाजवाद. फिर क्या था विश्व साम्राज्यवाद ने व्यापार और वस्तु को लेकर हमला बोल दिया. गैट, डंकल, विश्व बैंक, मुद्राकोष, नये-नये जाल में बांधने लगे तृतीय विश्व को. एनरान और कारगिल की तरह ईस्ट इंडिया कंपनी के वंशज सैकड़ों बहुराष्ट्रीय कंपनियां नये-नये जाल में बांधने लगे तृतीय विश्व को. इसका छल कपट और हिंसा [illegible] रवींद्रनाथ ने **अफ्रीका** शीर्षक कविता में किया है. इसलिए आज चारों और अशुभ संकेत हैं. समय भी बेहाल है. फटे हुए इतिहास के पृष्ठ उड़ रहे हैं हवा में. सिर्फ रूस में ही लेनिन पर हमला नहीं, भारत में भी हमला गांधी पर. राजघाट में भी पहरा बैठाना पड़ा. आंबेडकर की मूर्ति मुंबई में अपमानित हुई. दलितों का खून बह रहा है जमीन पर. आज स्वदेशी फिर उपहास की वस्तु. स्वनिर्भरता एक बोझ. पराधीनता अच्छी चीज हो गयी है. **ऋणम् कृत्वा पेप्सी पीवेत** ही सही आर्थिक नीति. संविधान का दिशा निर्देश, नशाबंदी की अनुशंसाएं आज फिर से मजाक बन गयी हैं. आज आर्थिक नीति पर निजीकरण, विदेशीकरण, उदारीकरण हावी है. भ्रष्टाचार ही आज शिष्टाचार है. चारों ओर हवाला, घोटाला का ही प्रचार है, जिसकी असली जननी नयी आर्थिक नीति है..

गुलाम मानसिकता पैदा करने के लिए, अंगरेजीयुक्त पत्रिका, टीवी आदि के जरिये सांस्कृतिक प्रदूषण शुरू हो गया है और हमें सब कुछ विदेशी अच्छे लगने लगे हैं. जल्दी धनी होने की होड़ में फिर हम मुक्ति से हट कर भाग्यवाद का शिकार हो रहे हैं. अब हम फिर चमत्कार का शिकार हैं. हमारा अस्तित्व संकट में है. चारों ओर दुश्मन ही नजर आ रहे हैं. इसलिए आज नये सिरे से भारत की खोज में निकलना होगा और स्वतंत्रता के उन संकल्पों को याद करना होगा, जिस पर हमलोगों ने सीखा था चलने को.

23 मार्च : शहीद दिवस पर विशेष

# मनमोहन सिंह के भारत में भगत सिंह की खोज

## अवसर

एके राय

वह इतिहास था खून से लिखा हुआ. भारत की स्वतंत्रता का इतिहास. सभी क्षेत्रों, समुदायों, जातियों का योगदान रहा उसमें. उस इतिहास की संरचना में एक जमाने में देश के नेताओं ने जेल में रहकर भारत की खोज की थी. वह इतिहास था न्याय का, बलिदान का, एकता का. आज मनमोहन सिंह के भारत में वह इतिहास खो गया. आज एक नये इतिहास की रचना जारी है जो होगा लूट का, भोग का, बिखराव का. जहां इतिहास खो जाता है वहां भविष्य नहीं बन सकता. आज के तमाम संकटों की जड़ इसी में है. आज इसीलिए नये रूप में पुराने इतिहास की खोज शुरू हुई है. और इस इतिहास के केंद्र हैं भगत सिंह, जो अपनी शहादत के साथ एक सिद्धांत भी छोड़ गये, जो आज के लिए भी सही है. इसलिए शहीद भगत सिंह, जीवित भगत सिंह से बहुत ज्यादा ताकतवर हैं तथा हर रोज और ज्यादा प्रासंगिक बन रहे हैं.

वैसे भी भारत का स्वतंत्रता संग्राम कभी भी सत्ता हथियाने का संग्राम नहीं, बल्कि शुरू से ही यह एक मुक्ति संग्राम था. विदेशी हुकूमत के अवसान के साथ भारतीय समाज के उत्थान तथा विकास का सवाल हमेशा ही उसमें जुड़ा रहा. 1930 की 26 जनवरी को जब राबी नदी के तट पर पहली बार पूर्ण स्वतंत्रता का संकल्प लिया गया था, उसमें भी आजादी का अर्थ, कुछ लोगों के लिए कुर्सी नहीं बल्कि आम भारतवासियों के लिए नयी जिंदगी के रूप में आंका गया था. 1931 के करांची कांग्रेस में उसके साथ एक ठोस आर्थिक कार्यक्रम जुड़ गया. देश भक्ति, धर्म निरपेक्षता और समाजवाद का आदर्श इस क्रम में साम्राज्यवाद विरोधी संघर्ष के अंग के रूप में पनपा था. इस आदर्श के सिर्फ एक प्रमुख प्रवक्ता ही नहीं, एक संपूर्ण प्रतीक थे भगत सिंह. हालांकि आज मनमोहन सिंह के जमाने में सब कुछ बदल गया है. विदेश भक्ति, सांप्रदायिकता और पूंजीवाद अब हमारा आदर्श है. डंकल प्रस्ताव में आजादी भी खतरे में, या कुछ संपन्न लोगों के उपभोग का आधार, जो इस बार के बजट में सीमा शुल्क में कमी तथा सौंदर्य प्रसाधन की चीजों पर राहत प्रावधानों में स्पष्ट है. 'बहरों को सुनाने के लिए धमाके की जरूरत है.' भगत सिंह ने दिल्ली एसेंबली में जो बम गिराये थे, यह वह धमाका था जिसने देश के चारों ओर क्रांति के संदेश को फैलाया था. क्या आज लुढ़कते हुए देश को सही पटरी पर बिठाने के लिए फिर धमाके की जरूरत है और इसीलिए चारों ओर भगत सिंह का खौफ है?

1907 से 1931. सिर्फ 24 साल का एक संक्षिप्त जीवन. इसमें भी अंतिम के दो साल जेल में ही. 1925 में 18 साल की उम्र में भगत सिंह ने भारत नौजवान सभा की स्थापना की. 1927 में हिंदुस्तान रिपब्लिक एसोसिएशन. 1928 में उस नाम के साथ सोशलिस्ट शब्द जोड़ा. शायद भारत में किसी राजनीतिक संगठन में सोशलिस्ट शब्द का यह पहला व्यवहार था.

1928. भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्वपूर्ण वर्ष. इसी साल साइमन कमीशन का बहिष्कार सारे भारत में हुआ. भारत की आजादी के सवाल पर बने उस कमीशन में एक भी भारतीय प्रतिनिधि नहीं था. 30 अक्तूबर 1928 को लाहौर में साईमन कमीशन के विरोध प्रदर्शन में लाला लाजपत राय पर बर्बरतापूर्वक लाठी बरसायी गयी, जिस कारण 13 नवंबर को उनकी मृत्यु हुई. क्रांतिकारियों ने भगत सिंह और चंद्रशेखर आजाद के नेतृत्व में 19 दिसंबर को अंगरेज पुलिस अफसर सैंडर्स को गोली से उड़ाकर इसका बदला लिया. लेकिन इन तमाम कर्मकांड के दौरान भगत सिंह की कलम बंद नहीं रही. भारत की स्वतंत्रता के मुख्य वाहक के रूप में सांप्रदायिकता को चिह्नित करने में वे भिड़े रहे. उसी साल लाहौर में सांप्रदायिक दंगा हुआ था. इस पर उन्होंने दो निबंध लिखे थे. भगत सिंह के चरित्र का एक विरल पहलू यह था कि वे किन्हीं भावनाओं में बहकर क्रांतिकारी नहीं बने थे, जो उस वक्त और उस उम्र में स्वाभाविक था. वैज्ञानिक चेतना तथा स्पष्ट विचार हमेशा उनका दिशा निर्देशक रहा. इसलिए भगत सिंह सिर्फ अतीत के प्रतीक नहीं भविष्य के भी प्रतीक हैं. सिर्फ शहीद नहीं, शहीद-ए-आजम.

मई 1928 में, जब उनकी उम्र सिर्फ 29 साल थी, भगत सिंह ने 'धर्म और हमारा स्वतंत्रता संग्राम' शीर्षक लेख लिखा, जिसमें उन्होंने कहा, 'हमारी आजादी का अर्थ केवल अंगरेजी हुकूमत से छुटकारा प्राप्त करना नहीं, बल्कि वह पूर्ण स्वतंत्रता का नाम है, जब लोग परस्पर घुल-मिलकर रहेंगे और दिमागी गुलामी से आजाद हो जाएंगे.'

टाल्सटाय के धर्म संबंधी विचारों का भारत की पृष्ठभूमि में उन्होंने जो विश्लेषण किया था, वह आज भी किसी समाज विज्ञानी के लिए विश्वसनीय है. जून 1928 में भगत सिंह ने एक और लेख 'सांप्रदायिक दंगे और उनका इलाज' में अपने विचारों को और विस्तारित कर कहा 'यदि इन सांप्रदायिक दंगों की जड़ खोजें तो उनका कारण आर्थिक ही जान पड़ता है. जहां तक देखा गया है इन सांप्रदायिक दंगों के पीछे सांप्रदायिक नेताओं और अखबारों का हाथ है और इसकी जड़ आर्थिक है.' लगता है मानों यह लेख हाल में अयोध्या कांड के बाद लिखा गया है. इस संदर्भ में रूस के इतिहास की ओर ध्यान खींचते हुए उन्होंने लिखा था, 'जो लोग रूस का इतिहास जानते हैं, उन्हें मालूम है कि जार के यहां भी ऐसी ही स्थितियां थीं. लेकिन जिस दिन से वहां सोवियत व्यवस्था कायम हुई वहां नक्शा ही बदल गया. बाद में वहां कभी दंगे नहीं हुए. अब वहां सभी को इंसान समझा जाता है धर्मजन नहीं.' भगत सिंह के विचार आज सोवियत संघ के भंग होने के बाद वहां सांप्रदायिकता, नस्लवाद, अलगाववाद की वापसी को देखते हुए और भी सही प्रभावित हो रहा है. सांप्रदायिक भाईचारे के साथ मजदूर वर्ग के नेतृत्व तथा समाजवाद का जो अभिन्न संबंध भगत सिंह ने उस समय स्पष्ट रूप में रखा था, वह अज भी देश के तथाकथित मार्क्सवादियों के लिए अनुकरणीय है. उनकी भाषा में वर्ग चेतना ही वह सुंदर रास्ता है, जो सांप्रदायिक दंगे को रोक सकता है.

आज धर्मनिरपेक्षता की परिभाषा पर ही बहस हो रही है. कोई सर्वधर्म समभाव कहता है, तो कोई धर्म को सार्वजनिक जीवन या राजनीति से अलग करना चाहता है. देश के वर्तमान शासक पहले विचार के पक्षधर हैं. संविधान की धारा 25 की व्याख्या भी उसी रूप में की जाती है. नतीजा सामने है. सौ धर्मों के समन्वय की प्रक्रिया में सौ धर्म लड़ रहे हैं और सरकार रेफरी का काम कर रही है. अयोध्या में लंका कांड उसी की देन है. भगत सिंह तथा उस युग का विचार इस संदर्भ में साफ था. गदर पार्टी जैसे आंदोलन का जिक्र करते हुए उन्होंने लिखा, '1914-15 के शहीदों ने धर्म को राजनीति से अलग कर दिया था. वे समझते थे कि धर्म व्यक्ति का व्यक्तिगत मामला है, इसमें दूसरे का दखल उचित नहीं है. न ही

इसे राजनीति में घुसाना चाहिए. इसलिए गदर पाटी जैसे आंदोलन. एकजुट, एक जान रहे, जिसमें सिख बढ़ चढ़कर फांसी पर चढ़े और हिंदू-मुसलमान भी पीछे नहीं रहे. आज धर्म को राजनीति में मिलाने का ही नतीजा है कि कनाडा में गदर पार्टी नहीं खालिस्तानी पनप रहे हैं. बाबरी मसजिद ध्वस्त करने के पहले आरएसएस ने चारों ओर नारा लिखा था : गर्व से कहो हम हिंदू हैं. इसके जवाब में देश के धर्मनिरपेक्ष तत्व न कोई नारा बना पाये, न कोई कार्यक्रम. फलस्वरुप सांप्रदायिकता आक्रामक और धर्मनिपेक्षता आत्मरक्षात्मक राजनीति बनी, जो वामपंथियों की दिशाहीनता की देन है. और यह स्वाभाविक भी है. कम्युनिस्ट लोग तो पहले ही भद्र पुरुष बन गये हैं. माक्सर्ववादी लोग भी अपने संगठनों को जनवादी नाम से पुकारने लगे हैं और समाजवादी लोग सोशलिस्ट शब्द को बहुत पहले ही मुलायम कर अपने राजनीति एजेंडा से अलग कर चुके हैं. लेकिन भगत सिंह अपने राजनीतिक विचारों के मामले में बहुत स्पष्ट थे. देश की तमाम गड़बड़ी के लिए शोषण युक्त व्यवस्था को जिम्मेवार ठहराते हुए उन्होंने लिखा था : 'उत्पादक तथा मेहनतकश वर्ग समाज के सबसे आवश्यक तत्व होते हुए भी इनके अधिकार तथा उनकी मेहनत की फसल को शोषक-परजीवी वर्ग लूट लेते हैं. इसलिए जो लोग समाज का बुनियादी परिवर्तन चाहते हैं, उन्हें समाजवादी दिशा में पुनर्रचना में पहल करनी होगी और वह भी कार्ल मार्क्स के वैज्ञानिक दर्शन के आधार पर.' 4 अप्रैल 1929 जब भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त ने दिल्ली एसेंबली में बम गिराये थे, तब वहां मजदूर वर्ग को नयी जंजीर में बांधने के लिए ट्रेड डिस्प्यूट एक्ट नाम से एक कानून पारित हो रहा था. आज 65 साल बाद शायद इसी बजट सत्र में 'चाचा' डंकल और 'मामा' मनमोहन सिंह के नेतृत्व में अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक के दबाव में उससे भी खतरनाक मजदूर विरोधी कानून को मंजूरी दी जाएगी. भारत का मजदूर वर्ग भी इसीलिए आज भगत सिंह को खोजेगा.

भगत सिंह, सुखदेव और राजगुरु को 23 मार्च 1931 को फांसी हुई. कराची कांग्रेस के ठीक पहले इस खबर ने देशवासियों के अंदर तीव्र रोष पैदा किया था. नेताजी सुभाष ने इसका भावपूर्ण वर्णन अपनी किताब 'दि इंडियन स्ट्रगल' में किया है. इसके कुछ ही दिन पहले 18 मार्च 1931 को गांधी-इर्विन समझौते के द्वारा सविनय अवज्ञा आंदोलन वापस हुआ था. सुभाष चंद्र बोस तथा उनके साथियों ने गांधी जी पर दबाव डाला था कि भगत सिंह तथा उनके साथी सुखदेव, राजगुरू की फांसी की सजा रद्द किये बगैर आंदोलन वापस नहीं होना चाहिए. एसेंबली में बम गिराने के समय भगत सिंह और बटुकेश्वर दत्त गिरफ्तार हुए थे. उस केस में दोनों को आजीवन कारावास की संजा हुई. लेकिन इसके बाद भगत सिंह पर 'सैंडर्स हत्या' का मुकदमा चलाया गया, जिसमें उनको फांसी की सजा हुई. अर्थात 4 अप्रैल 1929 से 23 अप्रैल 1929 तक लगातार जेल में रहे. लेकिन उस समय भी वे भारत की आजादी तथा क्रांति के संदर्भ में धर्म और राजनीति के पेचीदे सवालों को भूले नहीं. मौत के पहले महान नास्तिक भी आस्तिक बन जाते हैं, लेकिन भगत सिंह ने फांसी के 5 माह पूर्व 6 अक्तूबर 1930 को लिखा था ' मैं नास्तिक क्यों हूं?' धर्म के ठेकेदारों को उन्होंने चुनौती देते हुए पूछा. 'मैं पूछता हूं कि जब कोई आदमी पाप या अपराध करना चाहता है, तो आपका सर्वशक्तिमान ईश्वर उसे रोकता क्यों नहीं? वह अंगरेजों के मन में ऐसी भावना क्यों नहीं पैदा कर देता है कि वे हिंदुस्तान को आजाद कर दें? वह तमाम पूंजीपतियों के दिल में परोपकार का ऐसा रास्ता क्यों नहीं भर देता है कि उत्पादनों के साधनों पर से अपने स्वामित्व के अधिकार को त्याग दें. आप समाजवाद के सिद्धांत की व्यावहारिकता पर बहस करना चाहते हैं, चलिए मैं यह आपके सर्वशक्तिमान पर डालता हूं कि वह उसे व्यावहारिक बना दे... क्या यह आप मुझसे जानना चाहते हैं कि यदि ईश्वर को नहीं मानता तो दुनिया एवं इंसान को कहां से पैदा हुआ मानता हूं? यह प्राकृतिक घटना है. विभिन्न पदार्थों के आकस्मिक संयोग से उत्पन्न निहारिका से पृथ्वी की उत्पत्ति हुई. इसी प्रकार जीवधारी उत्पन्न हुए और उनसे ही लंबे अरसे के बाद मनुष्य का विकास हुआ. डार्विन की पुस्तक जीव की उत्पत्ति पढ़िये.' यह रचना कोई पुस्तकालय के ठंडे घर में बैठक नहीं लिखी गयी थी. फांसी के सेल में मौत के कुछ दिन पहले लिखी गयी थी. अपने जीवन का अंत हो रहा है, तब भारतवासियों को अंधविश्वास से मुक्त करने के लिए भगत सिंह ने वैज्ञानिक विचारों की ओर उनका ध्यान आकृष्ट किया है. वह मानसिक शक्ति, संतुलन तथा अपने विचारों के प्रति समर्पित और अडिग रहने की एक अनोखी मिसाल है.

आज के आतंकवादियों के विपरीत भगत सिंह उस जमाने के तमाम क्रांतिकारी हथियार बंद लड़ाई में विश्वास करते हुए भी एक महान मानवतावादी थे. सैंडर्स की हत्या के बाद लाहौर की दीवारों पर लाल स्याही से छपे इस्तेहार में कहा गया था, 'हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं, हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं, जिसमें हर व्यक्ति को पूर्ण शांति और स्वतंत्रता का अवसर मिल सके हम इंसान का खून बहाने की अपनी आवश्यकता पर दुखी हैं. लेकिन क्रांति के द्वारा सबको समान स्वतंत्रता देने और मनुष्य पर मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए कुछ रक्तपात अनिवार्य है.

भगत सिंह, सुखदेव, राजगुरु की फांसी समय के पहले ही, अचानक हुई थी. उस समय आइसीएस तथा बाद में मास्को में भारत के राजदूत केपी मेनन ने एक लेख में उल्लेख किया था कि अंतिम बुलाहट के वक्त भगत सिंह किताब पढ़ रहे थे. लेनिन का 'राज्य व क्रांति'. प्रहरी को उन्होंने कहा, 'रुको अभी एक क्रांतिकारी दूसरे क्रांतिकारी के साथ बात कर रहा है.' प्रहरी तो तब रुका नहीं, लेकिन इतिहास आज अचानक रुक कर उस ओर ताक रहा है.

आज जब देश में मंदिर मसजिद विवाद तथा सांप्रदायिक हिंसा के बादल मंडरा रहे हैं, जब डंकल प्रस्ताव और नयी आर्थिक नीति पूंजीवादी रास्ते पर देश को दुबारा गुलाम बनाने की ओर धकेल रही है, जब अपसंस्कृति और मानसिक गुलामी तमाम राष्ट्रीय भावना तथा नैतिक मूल्यों को नष्ट करने पर तुले हुए हैं, जब देश के दलित, श्रमिक शोषण जुल्म से तबाह हैं और परजीवी दो नंबरी कमाई से गुलछर्रे उड़ा रहे हैं, जब कश्मीर से कन्याकुमारी देश की अखंडता खतरे में है, तब देश फिर भगत सिंह तथा उनके साथियों को याद करेगा तथा उनके देशभक्ति, धर्मनिरपेक्षता तथा समाजवाद के पैगाम को भी जो रावी से कावेरी तक आज भी गूंज रहे हैं.

क्या आज इसी के लिए नये जोश से मनमोहन सिंह के भारत में भगत सिंह की खोज शुरु है?

# असली औजार तो विचार हैं

एके राय

यूरोप में पहले धर्म सुधार आया, इसके बाद औद्योगिक क्रांति और अंत में राजनैतिक परिवर्तन। मार्टिन लूथर, स्टीवेंसन और अंत में रूसो, वाल्टेयर और मार्क्स। लोकतंत्र, जनवाद, समाजवाद आदि का चिंतन इसी क्रम में उभर कर आया। लेकिन भारत में इतिहास इस क्रम से विकसित नहीं हो सका और आज उसकी पुनरावृत्ति संभव भी नहीं। इसका एक कारण है कि जिस युग में यूरोप में युक्तिवाद और विज्ञान फैला तथा वैचारिक क्रांति आई भारत उस समय उपनिवेश था। साम्राज्यवादी शक्ति यहां के अंधविश्वास को संरक्षण देकर ही अपना राज चलाना चाहती थी। साम्राज्यवादी शासन करने आए थे, सुधार करने नहीं। इसके बाद भी सुधार का प्रयास हुआ। राममोहन, विवेकानंद, फुले, सैयद अहमद, दयानंद आदि आए लेकिन उनका असर एक सीमा तक जाकर ही रह गया। समाज के कुछ ऊपरी हिस्से का रंग बदला लेकिन उसे गहराई से आंदोलित नहीं कर सका। एक सामंती तथा औपनिवेशिक शोषण के साथ समझौता करके ही एक रूढ़िहीन पूंजीवादी विकास शुरू हुआ जो किसी तरह की सामाजिक क्रांति नहीं ला पाया। कम्युनिस्ट घोषणापत्र में मार्क्स ने पूंजीवाद की एक क्रांतिकारी भूमिका के बारे में लिखा है जिसने अतीत के सारे सामंती अंधविश्वास तथा धार्मिक रूढ़िवाद के संकीर्ण दायरे को तोड़ कर मानव सभ्यता के विकास में एक महत्वपूर्ण योगदान दिया।

लेकिन भारत में ऐसा कुछ नहीं हुआ। यहां तमाम सामंती संस्कार तथा परंपरा के साथ ही पूंजीवादी विकास शुरू हुआ। कुछ लोगों ने अपने को समाजवादी बल्कि मार्क्सवादी भी घोषित किया लेकिन हर जगह द्वैत चरित्र रह गया। किसी ने सामंती शरीर पर पूंजीवादी पोषाक पहनी, किसी ने लाल टोपी भी लगा ली। आज इसीलिए हम ऐसे राष्ट्रवादी देखते हैं जो सब कुछ विदेशी पसंद करते हैं। ऐसे समाजवादी हैं जो जातपात मानते हैं। मार्क्सवादी हैं जो तिलक लगाते हैं। घर में पूजा कराते हैं, बाहर नास्तिकवाद का प्रचार करते हैं। चाहते हैं कि महिला राजनीति करे लेकिन अपनी स्त्री को इजाजत नहीं देते। सामाजिक और राजनैतिक जीवन का यह विरोध आज विकट होकर सही विकास में बाधक बन गया है। विचार और आचार, बात और काम, नीति और नीयत के अंदर दरार ने आज राजनीति को ही नीतिहीन बना दिया है।

लेकिन समस्या सिर्फ इतनी ही नहीं है। यह समस्या और गंभीर हो कर खड़ी हुई है। क्योंकि घड़ी की सुई उलटी घूमनी शुरू हो गई है। धर्मनिरपेक्षता की गति न सिर्फ धीमी पड़ी है बल्कि पैर उलटे जा रहे हैं। वैचारिक क्रांति की जगह वैचारिक प्रतिक्रांति शुरू हुई है। मंदिर, मस्जिद, गुरद्वारा आज राजनैतिक केंद्र बन गए हैं जो एक दूसरे के विरुद्ध अपने भक्तों को उकसाते हैं। आज एक नई चीज पैदा हुई है-धार्मिक मांग। सिखों की धार्मिक मांग सरकार ने मान ली, दूसरे संप्रदाय भी अपनी मांगें लेकर खड़े हैं। रेडियो पर यदि गुरबानी प्रचार हो सकता है तो वेदवाणी का क्यों नहीं ? बाईबल और कुअरान ने भी फिर क्या बिगाड़ा है ? धर्मनिरपेक्ष देश में नास्तिक लोगों का भी स्थान है इसलिए चार्वाक वाणी भी प्रसारित होनी चाहिए। अर्थात राजनीति में धर्म की वापसी ने देश के सामने एक नया तनाव तथा संकट खड़ा कर दिया है।

लेकिन समस्या अगर सिर्फ पुराने परिचित ईश्वर को लेकर ही होती तब भी बचाव था। पुराने भगवान ज्यादा पुराने तरीके से लोगों को आकर्षित नहीं कर पा रहे हैं। अब कुछ नए किस्म के आधुनिक भगवान पैदा हुए हैं जो अपने नए रहस्यवाद, चमत्कार आदि को आधुनिक पूंजीवादी मानसिकता की खुराक दे रहे हैं। भगवान रजनीश, बाल योगेश्वर, साईं बाबा आदि इस तरह के नए भगवान एक नए सांस्कृतिक प्रदूषण के केंद्र बने। भारत इस प्रदूषण का निर्यात भी कर रहा है। और यह प्रदूषण इतना कटु है कि आध्यात्मिक शून्यता की शिकार पश्चिमी दुनिया भी इसे पचा नहीं पा रही है। परेशान है और खदेड़ रही है। एक जमाने में हम विवेकानंद को भेजते थे, आज रजनीश को भेज रहे हैं। आजादी के बाद यही हमारी तरक्की है। सबसे बड़ी बात है कि इसने समाज के हर पहलू के मूल्यों को कलुषित कर डाला है। आज तमाम सार्वजनिक प्रतिष्ठान स्कूल, लायब्रेरी, पंचायत घर टूट रहे हैं लेकिन मंदिर मस्जिद बन रहे हैं। हर जगह यज्ञ शुरू हुए हैं। अचानक पता चला है कि ईश्वर के कान कमजोर हो गए हैं। इसलिए लोगों की आवाज सुनाने के लिए मंदिर मस्जिद में माईक लग गए। समाज में भगवान की वापसी के साथ-साथ जात-पात, तिलक, दहेज, ताबीज कवच नए रूप से उभर रहे हैं। राजनीति पर ज्योतिषी हावी हैं। ८० प्रतिशत मंत्री शरीर पर किसी न किसी तरह का पत्थर धारण किए हुए हैं। रुद्राक्ष की बिक्री बढ़ गई है। सारे वायदों के ऊपर आज भाग्यवाद है। और नया भाग्यवाद गांव के अशिक्षित पुराने लोगों का या उनके कारण नहीं बल्कि शहर के शिक्षित आधुनिक लोगों को आकर्षित किए हुए है। इस तरह गांव में पुराने भगवान और शहर में नए भगवान और ताकतवर हो कर वापस लौट रहे हैं। और हम इन तमाम भगवानों पर सवार होकर कंप्यूटर लेकर २१वीं सदी में जाने की योजना बना रहे हैं।

किसी भी राष्ट्र के निर्माण में संपदा सबसे मूल्यवान तत्व है। मनुष्य का कोई विकल्प नहीं ह। रोबट भी मनुष्य ही तैयार करते हैं। ईश्वर की वापसी के साथ इस मानवीय तत्व की गिरावट आई है। आज देश में सब कुछ संभव है। हमने अपराध रोकने के नाम पर कैदियों की आंखे फोड़ते देखा है। धर्म के नाम पर बच्चों की बलि देखी है। जाति के नाम पर लोगों को जिंदा जला दिया गया है। दहेज के लिए पत्नी की हत्या देख रहे हैं। पंथ के नाम पर गुरू पुरब के दिन स्वर्ण मंदिर के अंदर प्रमुख ग्रंथी पर गोली चली प्रधानमंत्री अपने ही सुरक्षा प्रहरी द्वारा मारी गईं। लेकिन समाज में कोई खास प्रतिक्रिया नहीं है। सब कुछ स्वाभाविक लग रहा है। स्वस्थ संस्कृति पर ही स्वस्थ राजनीति हो सकती है। धर्म की राजनीति और भाग्यवाद समाज को कमजोर करता है, अंधविश्वास और रहस्यवाद एक मानसिकता पैदा करते हैं। जिससे आसानी से उग्रवाद पनपने लगता है। मार्क्स ने धर्म को अफीम कहा था। आज का उन्माद देखते तो उसे निश्चित ही समाज के लिए शराब कहते।

इस देश में बदलाव की राजनीति को पहले एक सांस्कृतिक क्रांति के जरिए शुरू करना होगा जो धर्म की राजनीति के विरुद्ध मनुष्य की राजनीति अपनाएं। सांस्कृतिक क्रांति का पहलू अज्ञान और अंधविश्वास के साथ लड़ना तथा जीवन के हर पहलू में युक्तिवाद और वैज्ञानिक चेतना को जिताना है। इस क्रांति का दूसरा पहलू तमाम नए-पुराने 'भगवानों' से लड़ना और तमाम भंड़ो को फोड़ना है। कट्टरपंथियों के विरुद्ध यह एक कट्टर वैचारिक लड़ाई है। लेकिन असली लड़ाई होगी राजनैतिक क्योंकि धर्म और ईश्वर को भुना कर जो नेता वोट का व्यापार करते हैं उनका सामना करना पड़ेगा। भाग्य और भगवान को खड़ा रखकर ही इस पूंजीवादी व्यवस्था में शासक वर्ग अपनी राजनीति करते हैं और यहां पर बनातवाला, शहाबुद्दीन, अंसारी सब एक हैं। और राजीव गांधी के साथ एक मंच पर हैं।

धर्मनिरपेक्षता का अर्थ सौ धर्मों एक साथ खिलना नहीं है। धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र का मतलब बहुधर्मीय राष्ट्र भी नहीं है। बल्कि धर्म को सार्वजनिक जीवन तथा राजनीति से अलग करना। राष्ट्र को एक व्यापक मानवीय आधार पर स्थापित करना इसकी एक निश्चित दिशा है। और यह दिशा है अंधविश्वास पर युक्तिवाद को और रहस्यवाद पर विज्ञान को जगह देना। जिज्ञासा को प्रोत्साहन देना। जॉर्ज बर्नाड शॉ ने लोगों को उनसे सावधान रहने को कहा है जिनके ईश्वर आसमान में रहते हैं। धर्म की राजनीति करने वाले यही लोग हैं। शायद एक जमाना था धर्म समाज को जोड़ते थे। लेकिन आज वे बांटते हैं। धर्म की राजनीति संप्रदायवाद करता है। मनुष्य की राजनीति धर्मनिरपेक्षता। इतने दिन देश में धर्म और ईश्वर का रथ चला और हमें भाग्यवाद, व्यक्तिवाद और संप्रदायवाद मिला, देश की एकता और अखंडता खतरे में पड़ी। क्या हम मानवता के आधार पर धर्मनिरपेक्षता का रथ चलाएंगे जो जिज्ञासा, विज्ञान और समाजवाद के रास्ते पर नए भारत को ले जाएगा !

25.12.92
Jansatta

# आडवाणी, बुखारी या विवेकानंद

एके राय

राम-रावण का संग्राम हुआ था पुराण में। राम के तीर से मृत्यु हुई रावण की। बाबर-लोदी का युद्ध हुआ था इतिहास में। बाबर की तोप से ध्वस्त हुआ लोदी। अब जमाना बदल गया। राम-बाबर की लड़ाई शुरू हुई है। राम की कमान में आडवाणी, बाबर की कमान में बुखारी। पहली झोंक में ही जन्मभूमि मंदिर-बाबरी मसजिद एक साथ गिर गए। एक ही ढांचे पर दोनों ही नामों का दावा था। काबुल की कब्र में बाबर की हालत का पता नहीं। लेकिन मसजिद गिरने से रामलला को मंदिर से भी हटाना पड़ा। अब वे तंबू में हैं। सिर्फ राम मंदिर-बाबरी मसजिद ही नहीं इसके साथ देश-विदेश में कितने ही मंदिर-मसजिद ध्वस्त हो गए। साथ ही साथ एक परंपरा और आस्था भी। दो हजार लोगों की जान भी गई। कितने लोग आज राम के मार्फत बेघर होकर तंबुओं में हैं। लड़ाई का नतीजा जो भी हो, दोनों पक्षों के सेनापति घाटे में नहीं हैं। आडवाणी आज फिर चर्चा में, बुखारी आज खबरों में हैं। मंदिर-मसजिद का यह कौन सा युद्ध हुआ जिसमें दोनों ही ढह गए लेकिन लाभ हुआ सिर्फ नेताओं का ?

वह मंदिर था या मसजिद, किसने बनाया था, कैसे बना, किस ईश्वर की उसमें पुकार होती थी इसकी सच्चाई जानने के लिए कई सालों से देश के तमाम पंडितों ने माथापच्ची की फिर भी इसका हल नहीं निकल पाया। कितनी दलीलें, दस्तावेज इकट्ठे हुए। आम लोग असमंजस में हैं। उनके लिए एक ही सच्चाई काफी है। वह ढांचा जो विवादित बना, बिना विवाद के सैकड़ों सालों से खड़ा था और इस बीच हिंदुस्तान में कितनी उठापटक हुई, कितने सम्राट, राजा, नवाब आए-गए। किसी ने भी उसे छुआ नहीं। तब आज उसे गिराने की दरकार क्या थी ? आज यदि लोग उसे मंदिर कहते हैं और मसजिद भी और वह भी सालों से तो उसमें शिकायत की बात क्या है ? धर्म समन्वय के उस प्रतीक को हमेशा के लिए संरक्षित क्यों नहीं रखना चाहिए था ? धार्मिक साहिष्णुता और समन्वय सिर्फ भारत की ही नहीं पूरब की संस्कृति है। एचजी वेल्स ने अपने इतिहास में कहा है, यूरोप में राज के साथ और ईश्वर भी बदले। एक युग आया तो पुराने युगों के तमाम निशान मिटा दिए। इस रूप में अलेक्जेंड्रिया का विशाल पुस्तकालय जला दिया गया था जो ग्रीक ज्ञान-विज्ञान का भंडार था। स्पेन में सात सौ साल का मुसलिम युग का हर चिन्ह मिटा दिया गया। लेकिन पूर्वी दुनिया में ऐसा नहीं हुआ था इसलिए चीन के कैंटन में आज भी पुरानी मसजिद अटूट है। थाईलैंड-इंडोनेशिया में हिंदू संस्कृति और दक्षिण भारत के केरल में उस जमाने के गिरजा और ईसाई लोग हैं। तब अंग्रेजों का राज देश में नहीं था। वे कौन लोग हैं जिन्होंने राम के बाण को इस महान भारतीयता के सीने पर ही चला दिया ?

पिछले कुछ सालों से देश की राजनीति में मंदिर-मसजिद के सिवाय औरं कोई सवाल नहीं है। केंद्र सरकार, राज्य सरकार बनती हैं- बिगड़ती हैं, इसी मुद्दे पर। आज ठेकेदारों का जमाना है। सरकारी कारखाने भी ठेकेदारों को दिए जा रहे हैं। राजनीति पर भी ठेकेदारों की पकड़ है। प्रचार है कि ठेकेदारी का काम सस्ते में होता है इसलिए राज भी सस्ते में चलेगा। वह दिन भी आएगा जब थानों और नौकरी की नीलामी भी ठेकेदार करेंगे। उसी क्रम में धर्म के भी ठेकेदार हैं, संप्रदाय के भी। हिंदुओं का ठेकेदार और मुसलमानों का भी ठेकेदार। सिख-ईसाई के ठेकेदार तो हैं ही। इसीलिए कर चोरी और कार सेवा एक साथ चल सकती हैं। घी में डालडा के माफिक राम के साथ मारुति की मिलावट। और राम और मारुति के पुराने संबंध हैं। लेकिन जब कार में चल कर कार सेवा नहीं होती थी उस वक्त भी देश में राम भक्त थे। मंदिर-मसजिद का विवाद नहीं था। बाबर के कुछ दिनों के बाद ही अकबर के समय में संत तुलसीदास रहे। तुलसीदास के रामचरित मानस ने हिंदू समाज के मानस में हमेशा के लिए राम को बैठा दिया। लेकिन राम जन्मभूमि मंदिर और बाबर के बारे में उसमें कोई वर्णन नहीं।

आधुनिक भारत में हिंदुत्व के प्रतीक रहे स्वामी दयानंद सरस्वती, राम मोहन राय, विवेकानंद। लेकिन किसी ने यह सवाल नहीं उठाया। जिन्ना ने सांप्रदायिक झगड़ा फैला कर पाकिस्तान हासिल किया लेकिन उन्होंने भी उस झगड़े में अयोध्या को नहीं लपेटा। भारत में जब हिंदू हारे तब देश में मंदिरों की कमी नहीं थी उसके बाद जब मुसलिम पस्त हुए तब मसजिदें भी बहुत थीं। मंदिर मसजिद के साथ किसी भी कौम के उत्थान पतन का संबंध नहीं है। विवेकानंद ने जब शिकागो में हिंदुत्व पर भाषण दिया तो उसमें एक शब्द भी मंदिर-मसजिद पर नहीं बोले और बाद में साधु-संत लोग जब उनके पास आध्यात्मिक उपदेश के लिए आए तो उन्होंने उन लोगों को फुटबाल खेलने का उपदेश दिया था। 'नायम आत्मा बलहीनेन लभ्य।' उसी प्रकार नायम् सत्ता बलहीनिन लभ्य। इसलिए बलवान बनो। यह रहा स्वामीजी का आह्वान और यह बल मारुति पर चढ़ कर मंदिर बनाने से नहीं मिलता। इसके लिए समाज के अंदर की गंदगी को साफ करना पड़ेगा। शिक्षा, ज्ञान-विज्ञान चाहिए और जात-पात का अंत कर सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा चाहिए। आडवाणी का रथ और विवेकानंद का पथ दो अलग-अलग ध्रुव हैं। भारत जिन लोगों को गुरू मानता है उन तमाम लोगों की ही दिशा जब दूसरी थी तब कहां से फिर मंदिर-मसजिद, साधु-संतों की खोज शुरू हुई ?

बाबर ने सिर्फ चार साल राज्य किया था। पंद्रह सौ छब्बीस से पंद्रह सौ तीस तक। और हम पांच सालों से उस पर झगड़ा छेड़े हुए हैं और वह भी चार सौ बासठ साल के बाद। लेकिन झगड़ा क्यों ? भाजपा, बजरंग दल, शिव सेना आदि संगठन हिंदू भावनाओं पर राज करना चाहते हैं। इसीलिए इतिहास की कब्र खोदी जा रही है। लेकिन उसमें भी बाबर क्यों निशाना होंगे ? बाबर ने हिंदुओं से दिल्ली नहीं छीनी। या पठानों से अफगानिस्तान नहीं छीना था। बल्कि पठान सुल्तान इब्राहिम लोदी से परेशान हिंदू राजाओं ने बाबर को आमंत्रित किया था। इसलिए पठान लोग बाबर पर नाराज हो सकते हैं हिंदू क्यों हों ? भारत में मुगल सराय है लेकिन कौन मुगल, पता नहीं। इसलिए आडवाणी बैचेन क्यों हैं ? बाबर हिंदुओं का विरोधी था ऐसा कोई प्रमाण नहीं। मंदिर तोड़ने की कोई भी घटना उनके साथ नहीं जुड़ी है। चित्तौड़ के राणा सांगा से उनकी लड़ाई जरूर हुई थी। लेकिन उनका ध्यान हमेशा ही अफगानों पर रहा। बाबर की मृत्यु के बाद शेरशाह के नेतृत्व में उन्होंने कुछ दिनों के लिए दिल्ली की गद्दी छीनी भी थी।

इस बार दंगे में बंबई पहले नंबर पर रहा और बाबरी मसजिद टूटने से शिव सेना के नेता ने गर्व भी किया है। शिव सेना शिवाजी के नाम पर बना संगठन है। लेकिन शिवाजी ने कभी कोई मसजिद नहीं तोड़ी। औरंगजेब के साथ लड़े लेकिन इसलाम से नहीं। सभी धर्मों पर समदृष्टि शिवाजी की एक महान विशेषता रही। औरंगजेब की धार्मिक भेदभाव और असहिष्णुता की नीति की भर्त्सना में शिवाजी ने जो पत्र लिखे थे वे इतिहास की मूल्यवान धरोहर हैं। औरंगजेब के चंगुल से मुक्त होकर शिवाजी अयोध्या होकर ही स्वदेश लौटे थे। लेकिन बाबरी मसजिद का बखेड़ा उन्हें खटका नहीं। शिवाजी के बाद मराठा भारत की निर्णायक शक्ति बने। दो तिहाई भारत उनकी पताका के नीचे था। १७५८ में दिल्ली के मुगल बादशाह और पंजाब भी। लेकिन तब भी उन्होंने अयोध्या पर धावा नहीं बोला। तब किस शिवाजी की सेना के हैं ये लोग ? सवाल उठाया गया कि बाबर विदेशी हमलावर थे। इस प्रकार का आरोप दक्षिण के द्रविड़ नेता राम पर लगा कर रामलीला का विरोध करते हैं। भारत में कौन देसी, कौन विदेशी इस प्रश्न का अंत विश्वकवि रवींद्रनाथ की उस कविता के अंदर हमेशा के लिए हो गया है जहां महान भारत के मानव सागर की आर्य, अनार्य, शक, हूण, पठान, मुगल सभी के महामिलन के केंद्र के रूप में कल्पना की गई है।

उसी प्रकार बुखारी और बाबर में मेल नहीं। जामा मसजिद के शाही इमाम की देह पर दूसरे का ही जामा है। मुगलों की भारत को जो भी देन हो बुखारी की देन है धर्मांधता, पश्चादमुखिता और अलगाववाद। जिन्ना ने पाकिस्तान बना कर मुसलमानों को एक बार परेशान किया। उर्दूभाषी मुसलमान आज ढाका और कराची में कराह रहे हैं। उनकी जितनी क्षति हुई उसकी कोई तुलना नहीं। अब जो बचा है बुखारी उसे पूरा कर रहे हैं। यह याद दिलाने की जरूरत है कि बजरंग दल के असली जनक आडवाणी नहीं बुखारी हैं। इस 'बुखारीनामा' की शुरुआत शाहबानो केस से हुई जब मुसलिम नारियों को बंधन में रखने के लिए धार्मिक उन्माद फैला कर सुप्रीम कोर्ट को अपमानित किया गया था। वही रास्ता आज आडवाणी के लोग अपना रहे हैं। उसके बाद बाबरी मसजिद में उपासना के सवाल पर कोर्ट की रोक को चुनौती दी गई और जुलूस के साथ वहां पहुंचने की धमकी दी गई। लेकिन जुलूस तो पहुंचा नहीं उसकी प्रतिक्रिया में बजरंग दल पैदा हुआ जो आज देश को खतरे में डाले हुए है। आज बाबरी मसजिद कमेटी कोर्ट की राय पर अमल करने की बात कर रही है। शुरू में यदि करती तो ये हालात पैदा ही नहीं होते। सांप्रदायिक राजनीति का यही सत्य है कि एक सांप्रदायिकता दूसरे को मदद देती है। बुखारी हैं, इसलिए आडवाणी हैं। एक के नहीं रहने से दूसरा भी नहीं रहेगा। आडवाणी और बुखारी ने मिल कर सागर मंथन किया है। केंद्र की कांग्रेस (आई) सरकार ने उस पर पुष्पवृष्टि की है। लेकिन अमृत नहीं सिर्फ गरल पैदा हुआ जिसको धारण करने के लिए आज कोई नीलकंठ नहीं है।

रामायण के राम और इतिहास के बाबर के बीच कोई विवाद नहीं हो सकता। आपस में वैर करना कोई धर्म नहीं सिखाता। तब यह अनर्थ क्यों ? इसका उत्तर धर्मशास्त्र और इतिहास में नहीं राजनीति में मिलेगा। सब चीज की जड़ में वोट की राजनीति है। राम मंदिर को मुद्दा बना कर ही लोकसभा की सीटें दो से बढ़ कर छियासी हो जाएं और पेट्रोल चालित रामरथ के बिहार के समस्तीपुर पहुंचने से ही वे और बढ़ कर एक सौ उन्नीस हो जाएं तब अयोध्या पर चढ़ जाने से दिल्ली की राजगद्दी कौन रोकेगा ? और दिल्ली पर आडवाणी का राज होने से पंद्रह करोड़ मुसलमानों पर बुखारी का राज होगा। इसलिए एक ही साथ आडवाणी का बाण और बुखारी का बुखार भारत के सिर पर है। कुछ लोगों का सुझाव है कि पुराने ढांचे को फिर से बनाने के पहले पुरातत्व विभाग द्वारा उस जगह की खुदाई हो। पता नहीं आडवाणी इसे स्वीकार करेंगे या नहीं लेकिन आम लोग मंदिर-मसजिद की राजनीति से अब ऊब चुके हैं। कुछ नेताओं की गिरफ़्तारी या सरकार की बरखास्तगी समस्या का निदान नहीं है।

बर्नाड शॉ ने कहा था उस आदमी से सावधान जिसका ईश्वर आकाश में रहता है। लेकिन आज सिर्फ सावधान होना ही काफी नहीं। उसका सामना करना है। इसलिए बाबरी मसजिद और राम मंदिर बने। लेकिन कोई मंदिर या मसजिद के नाम से नहीं बल्कि एक राष्ट्रीय एकता के स्मारक के रूप में और उसके द्वार पर विवेकानंद की वह बात लिख दी जाए जो उन्होंने हिंदू-मुसलिम एकता पर कही थी। 'हमारी यह मातृभूमि जो दो हिंदू और मुसलमान समाजों की मिलन स्थली है, वेदांत का मस्तिष्क और इसलाम का शरीर ही इसकी एकमात्र आशा है। मैं अपने मानस नेत्र से देख रहा हूं कि आज के इस संघात और बवंडर के अंदर से एक सही और अपराजेय भारत का आर्विभाव होगा, वेदांत का मस्तिष्क और इसलाम का शरीर लेकर।' शायद आडवाणी और बुखारी दोनों ही इसका विरोध करेंगे। लेकिन जब विवेकानंद साथ हों तो चिंता कैसी ?

**_आधुनिक भारत में हिंदुत्व के प्रतीक रहे स्वामी दयानंद सरस्वती, राममोहन राय, विवेकानंद। लेकिन किसी ने यह सवाल नहीं उठाया। जिन्ना ने सांप्रदायिक झगड़ा फैला कर पाकिस्तान हासिल किया लेकिन उन्होंने भी उस झगड़े में अयोध्या को नहीं लपेटा। भारत में जब हिंदू हारे तब देश में मंदिरों की कमी नहीं थी उसके बाद जब मुसलिम पस्त हुए तो मसजिदें भी बहुत थीं।_**

हिन्दुस्तान 9.1.98

# अब दूसरा स्वतंत्रता संग्राम हो

**ए.के. राय**

पंजाब की रावी नदी के तट पर २६ जनवरी, १९३० को भारत के स्वतंत्रता सेनानियों ने संकल्प लिया था पूर्ण स्वराज का। कल्पना थी ऐसे भारत की जहां हर आंख से आंसू पोंछा जायेगा। गरीबी, अशिक्षा और शोषण से मुक्त एक न्यायपूर्ण व्यवस्था होगी जहां सभी लोग निर्भय होकर खुशी जीवन बिता पायेंगे। इस संकल्प के साथ जो यात्रा शुरू हुई उसके पहले दौर का अंत हुआ १५ अगस्त, १९४७ को। स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर उस इतिहास को याद दिलाने के लिए फिर मध्य रात्रि में संसद का विशेष अधिवेशन हुआ। लेखा-जोखा हुआ बीते हुए दिनों का। संकल्प लिया गया दूसरी आजादी की लड़ाई का। हम धूमधाम से स्वतंत्रता की पचासवीं वर्षगांठ मना रहे हैं, जबकि देश को राजनैतिक आकाश पर अस्थिरता के काले बादल छाये हुए हैं और जमीन पर जनता शोषित लांछित होकर कराह रही है। आजादी की दूसरी लड़ाई आज इसी स्थिति के विरुद्ध है।

यात्रा में कहां गलती हुई कि हम चारों ओर से अशुभ लक्षणों से घिर गये हैं और आजादी के पचास वर्ष बाद फिर से दूसरी आजादी की लड़ाई की जरूरत पड़ रही है। गलती एक नहीं, गलती अनेक हैं। लेकिन जो मूल गलती है, वह है स्वतंत्रता की लड़ाई का मूल लक्ष्य से भटक जाना। हमारी दिशा थी स्वदेशी, सदाचार, समाजवाद। आज हमारी दिशा है विदेशी, कदाचार, पूंजीवाद। स्वतंत्रता की तमाम सोच से हटकर हमने विकास का पूंजीवादी रास्ता अपनाया। पूंजीवाद आज दुनिया में स्वतंत्र नहीं रह सकता। इसलिए हम विदेशी पूंजी और बहुराष्ट्रीय कंपनियों के पिछलग्गू बने। स्वदेशी विसर्जित हुआ। विदेशी कंपनियां बाजार के लिए समाज में उपभोक्तावाद लायीं। एक नकली संपन्नता पनपी। लोग विलासी बने। सादगी समाप्त हुई। सादगी हटने से सदाचार भी विदा हुआ। आज हम लोग और भोग के साथ कदाचार में डूब गये हैं।

संसद ने विलाप किया कि राजनीति पर महाचोरों का कब्जा है। अपराध का राजनीतिकरण तथा राजनीति का अपराधीकरण हो रहा है। समाजवादी दिशा का त्याग करने के साथ समाज का हित भी गौण हो गया। अपना हित मुख्य। पूंजीवाद ने एक ऐसे व्यक्तिवाद को जन्म दिया जहां निजी स्वार्थ के सामने और कुछ नहीं रह गया। समाजवाद जोड़ता है। पूंजीवाद तोड़ता है।

भारत में भी टूटन की प्रक्रिया चारों ओर। आज हमारे समाज, संगठन, पार्टी, सरकार सभी टूट रहे हैं। दिल और दिमाग भी। देश भी टूटने की कगार पर। विकासशील देश के लिए पूंजीवाद एक जहर है। विशेषकर भारत की तरह एक बहुभाषी, बहुधर्मी, बहुनस्ली देश के लिए। भ्रष्टाचार की जड़ भी पूंजीवाद में ही है। भारत भी उसी धारा में बह गया। इसलिए कदाचारों की बाढ़ है देश में। हम आज अनगिनत हवाला-घोटाले का शिकार हैं।

एक जमाना था जब हम राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद आर्थिक स्वतंत्रता के बारे में सोचते थे। उसको हमने मंजिल बनाया था। स्वनिर्भरता की उपासना करते थे। अपने देश को अपना बनायेंगे। पूरे विश्व को सुनायेंगे। यही हमारी तमन्ना थी। यह देश नब्बे करोड़ का है। दुनिया की प्राचीनतम सभ्यता का उद्गम स्थान। लेकिन आज हमारा कोई संदेश नहीं है। दुनिया में यह देश आज घोटाले के जन्मस्थल के रूप में प्रचारित है। स्वनिर्भरता की जगह परनिर्भरता आज हमारा रास्ता है। विदेशी पूंजी की पूजा कर रहे हैं। हम जैसे राजीखुशी से गुलाम बनने के लिए तैयार हो गये हैं। देश के अर्थतंत्र का भार लेने के लिए विदेशी बहुराष्ट्रीय कंपनियों को बुला रहे हैं।

हमारी कमजोरी महाराष्ट्र में एनरॉन के साथ लड़ाई में उभरकर सामने आयी। आखिर अमरीकी धमकी के सामने झुकना ही पड़ा। अब मारुति उद्योग में सुजुकी की धमकी का सामना करना पड़ रहा है। जिस रूप से खुल्लमखुल्ला ये लोग आज हमें निर्देश दे रहे हैं तथा हम पर शर्त रख रहे हैं वह कुछ दिन पहले तक भी अकल्पनीय था। हमने ही इन्हें यह हिम्मत दी है। स्वतंत्रता के वक्त मुश्किल से दस ऐसी कंपनियां रही होंगी। आज उसकी संख्या दो हजार पहुंच गयी है। आज ये भारत का भी मालिक बनने जा रहे हैं। इन्हीं लोगों के आयातित सामान और मशीनों के कारण देश के तीन लाख उद्योग बंद हैं, पचास लाख रोजगार के स्रोत छीने जा रहे हैं। बेरोजगारी मिटेगी कैसे?

मानव अधिकार भंग के सवाल उठाकर दुनिया का सबसे ज्यादा मानव अधिकार भंग करने वाले पश्चिमी दुनिया का दबाव हमारी कश्मीर और पंजाब नीतियों पर आ रहा है। हमने संकल्प लिये थे कि हम राजनैतिक स्वतंत्रता के बाद आर्थिक स्वतंत्रता हासिल करेंगे। आज हम आर्थिक निर्भरता के रास्ते में राजनैतिक स्वतंत्रता खोने जा रहे हैं। आज हमारा बजट विश्व बैंक के निर्देश पर बन रहा है। अमरीका के निर्देश पर सीमा शुल्क कम करना पड़ रहा है जिससे विदेशी सामानों से बाजार भर जाये। सब चीजें यदि विदेश से ही आये तो देश में कौन चीज बनायेगा? और जब कुछ बनना ही नहीं है तो उद्योग किस चीज का?

भारत ने किसी राजशक्ति के पास अपनी आजादी नहीं खोयी थी, बल्कि एक व्यापारी कंपनी ईस्ट इंडिया कंपनी के पास। हमारे शासकों को क्या गुल खिलाया। समझने के पहले ही हम बंध गये और आजादी खो बैठे। कोई खास बड़ी लड़ाई भी नहीं हुई जबकि हमारे राजा तथा नवाबों के पास लाखों फौज, हजारों तोपें थीं। पलासी में पचास हजार नवाब की फौज तोप बंदूक के साथ खड़ी रह गयी और क्लाइव ने एक हजार फौज के साथ बंगाल जीतकर भारत मे अंग्रेज राज की शुरुआत की। विदेशी कपनी ने सत्ता पर कब्जा कर पहले ही यहां के घरेलू उद्योगो को नष्ट किया जिसमें उनके आयात किये हुए सामानों की बिक्री हो। आज ईस्ट इंडिया कंपनी की वंशज कितनी कंपनियां हमें घेर रही हैं। इनके लोग हमारे समाज में, सरकार में, मीडिया में घुसकर हमारी भावनाओं को बदल रहे हैं। आज औद्योगिक, सांस्कृतिक हर क्षेत्र में इसका प्रभाव भी दिखलायी पड़ रहा है। आज अनाज के लिए यूरिया खाद विदेश से आ रही है और देश में खाद बनाने के कारखाने सिंदी, दुर्गापुर, बरौनी, गोरखपुर आदि या तो बंद हैं या बंद हो रहे हैं।

स्वतंत्रता की स्वर्ण जयंती पर हम अनाज के मामले में फिर विदेश पर निर्भर बन रहे हैं। आज ऊर्जा का स्रोत कोयला भी आयात होने लगा है और देश के सार्वजनिक क्षेत्र की कंपनी भारत कोकिंग कोल बीमार पड़ गयी है। कोई भी विकास के लिए इस्पात एक बुनियादी धातु है और भारत में इस्पात उद्योग की असीम संभावनाएं हैं जबकि हम सिर्फ २ करोड़ टन इस्पात का उत्पादन करते हैं। उसके बाद भी हमारा इस्पात बिक्री के अभाव में पड़ा हुआ है क्योंकि भारत के इस्पात उद्योग का ध्वंस करने के लिए कम दाम में विदेश से इस्पात लाकर डम्प किया जा रहा है।

अब तो जी.टी. रोड भी विदेशी कंपनी बना रही है जो पांच सौ साल पहले शेरशाह ने बनाया था। आज कम्प्यूटर से लेकर हम सड़क बनाने में भी अक्षम हैं। देश के अर्थतंत्र का विदेशीकरण कमीशनखोरी और कमीशनखोरी कालेधन पैदा करती है जो आज राष्ट्रीय आय का आधार बनकर पूरी राजनीति को नियंत्रित करती है। जनता के लिए शुद्ध पानी नहीं, लेकिन विदेशी शराब की दुकानें हर कदम पर खुल गयी हैं।

स्वतंत्रता के वक्त देश किसी का कर्जदार नहीं था बल्कि इंग्लैंड हमारा कर्जदार रहा। आज शायद ही कोई देश है जिससे हमने कर्ज नहीं लिया है और बजट का आधा कर्ज का सूद मूल चुकाने में समाप्त हो जाता है। विकास होगा कैसे? ऋण कृत्या पेप्सी पीवेत। यही हमारी आर्थिक नीति है जिसकी हम सभी जिसमें देश का प्रेस भी है, दोनों हाथों से ताली बजाकर तारीफ करते हैं।

इस रूप में निर्भरता के असीम स्वतंत्र विकास का प्राणतत्व को नष्ट कर दिया। एक आदत पैदा की मदद मांगने की। एक गुलामी मानसिकता का जन्म हुआ। एक निराशा का वातावरण भी। जैसा कि हम स्वतः सोचने लगे कि हम आजादी के लिए योग्य नहीं हैं। हमें एक विदेशी गर्जन चाहिए। अंग्रेजी भाषा के साथ अब अंग्रेजी राज की भी तारीफ होने लगी है। लगता है कि स्वतंत्रता की लड़ाई ही गलत थी। शहीदों ने बेकार अपना जीवन दिया। पूंजीवादी प्रचार और शासकवर्ग का आचरण ऐसा परिवेश पैदा कर रहे हैं जैसा कि ईस्ट इंडिया कंपनी के आने के वक्त था। आज देशभक्ति की जगह विदेशभक्ति का जोर है। हमें सब कुछ विदेशी अच्छा लगने लगा है।

भाषा, पोषाक, बीवी यहां तक कि कुत्ता भी। स्वदेशी युग के बुनियादी स्कूल टूट रहे हैं। उसकी जगह इंग्लिश मीडियम स्कूल खुल रहे हैं। बच्चे मम्मी-डैडी-आंटी बोलना सीख रहे हैं। डिस्क एंटीना के सहारे टी.वी. अपसंस्कृति घर के अंदर तक पहुंच गयी है। जल्दी धनी बनने की होड़ हमें वैज्ञानिक चेतना तथा युक्तिवादी चिंतन से हटाकर फिर अंध संस्कार में विश्वासी बनाये हैं। तमाम पुराने नयें भगवान वापस आये हैं और पढ़े-लिखे लोग टाई पहनकर गणेशजी को दूध पिला रहे हैं। नैतिक मूल्यों की गिरावट ने देश में एक चरित्र का संकट पैदा किया है और हम विवेकानन्द की जगह चन्द्रास्वामी को पाते हैं। रावी से कावेरी पचास वर्ष की यात्रा की यही उपलब्धि है।

# अथ अजगर कथा

**'अ' से 'अजगर'.** बंगला वर्णमाला का पाठ पढ़ाते समय अकसर पहले अक्षर 'अ' का परिचय 'अजगर' के चित्र द्वारा कराया जाता है. हाल ही में भारत के हिंदी क्षेत्र के नये राजनीतिक समीकरण का परिचय भी इसी 'अजगर' के जरिये करवाया गया. पाठ ऐसे पढ़ाया गया—'अहीर' के 'अ', 'जाट' के 'ज', 'गूजर' के 'ग' और 'राजपूत' के 'र' को जोड़ दो, तो बनता है 'अजगर'. वोटरों को समझाया गया कि अ, ज, ग और र एक साथ जुड़ जायें और हमला बोल दें, तो किसी की खैर नहीं, कम-से-कम राजीव गांधी की तो बिल्कुल ही नहीं. इस दावे में दम भी नजर आता है. मिसाल है इलाहाबाद. ताजा मिसाल तमिलनाडु को भी कहा जा सकता है, जहां अजगर के द्रविड़ रूप ने दिल्ली से राज करने के लिए भेजे गये नेताओं को 'हजम' कर लिया.

इस अजगर से कांग्रेस अध्यक्ष राजीव गांधी में कितना डर पैदा हुआ—पता नहीं, मगर अन्य बहुत सारे लोग जरूर डर गये, जैसे—हरिजन, आदिवासी और मुसलमान. वैसे तो इस अजगर की उक्त परिभाषा का खंडन किया जा चुका है, फिर भी राजनीति या जाति समीकरण के इस नये जानवर का जोर कम नहीं है. अजगर आज जंगल छोड़ कर सभा मंच पर पहुंच चुका है. हरेक कुरसी के चारों ओर कुंडली मारे हुए है. बिहार में अभी-अभी जो नेता बदल हुआ है, उसमें भी इस अजगर की छाप साफ नजर आ रही है. इसी क्रम में अजगर की चर्चा भी तेज हुई है. कलकत्ता में जो भाकपा का राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ, उसमें भी इस पर चिंता व्यक्त की गयी. बेचारे बहुगुणा के अनेक अवगुण रहे होंगे, लेकिन एक गुण तब सामने आया, जब उन्होंने 'अजगर' के पेट में जाने से इनकार कर दिया.

सुना जाता है कि भारतीय राजनीति में अजगर के जन्मदाता देवीलाल हैं. मगर असल में इसके जन्म के पीछे कई अन्य देव-देवियों का भी हाथ है. सो आज कितने ही तरह के अजगर मैदान में नजर आ रहे हैं. कोई कांग्रेसी तो कोई जनता दली, और तो और, नक्सलवादी भी पीछे नहीं हैं. जातिवाद के साथ माओवाद मिला कर मध्य बिहार में खूनी क्रांति चल रही है.

पिछले साल दिसंबर में हरियाणा के समालखा की जिस सभा में देवीलाल ने 'अजगर' को परिभाषित किया था, वह सभा एक गूजर नेता अवतार सिंह के मंत्री बनने के सिलसिले में हुई थी, जो मंत्री बनने के समय विधायक नहीं थे. इससे ठीक दो माह पहले उसी स्थान पर केंद्रीय मंत्री राजेश पायलट का जन्मदिन मनाने के बहाने कांग्रेस ने गूजरों का सम्मेलन बुलाया था. इससे भी पहले फरीदाबाद में देवीलाल ने राष्ट्रीय गूजर किसान सम्मेलन बुला कर अजगर को जन्म दिया था. यानी गूजरों को जुटा कर अजगर को जन्म देने की प्रक्रिया में जनता दल और कांग्रेस के बीच एक अलिखित दौड़ चल रही थी. अंततः अजगर का जन्म हुआ और वह तुरंत राजनीति पर हावी हो गया. हरियाणा से बिहार पहुंच गया. राजा साहब को रोकने के लिए छोटे साहब को लाया गया. यानी जनता अजगर से लड़ाने के लिए कांग्रेसी अजगर लाया गया.

**राजनीति में** जाति समीकरण हमेशा ही पेचीदा होता है. अजगर ने इसे और भी जटिल बना दिया. विभिन्न राज्यों में जनता दल की कार्यसमिति तथा अध्यक्ष के चुनाव में भारी आफत पैदा हो गयी. झगड़े की गूंज चारों ओर सुनाई पड़ने लगी. कांग्रेस की तरह इस नये दल में भी सभी नेता या तो ऊपर से चुने जाते हैं या स्वयंभू होते हैं. संगठन के अंदर जनवाद या चुनाव कराने का उपदेश दूसरों के लिए है. सो लड़ाई छिड़ गयी, बिहार जनता दल का अध्यक्ष 'अजगर' छाप नहीं होने के कारण सभा में ही हाथापाई हो गयी. केंद्रीय नेतागण भी पीछे नहीं रहे. पिछड़ों के अगड़े नेता वी पी सिंह और अगड़ों के पिछड़े नेता अजीत सिंह ने एक साथ उत्तरप्रदेश दौरे को स्थगित कर दिया. पार्टी बहुत बुरी स्थिति में है. अनेक नेता पार्टी में भी हैं और साथ ही इस्तीफा भी दिये हुए हैं. कौन नेता कहां है, क्या है, कहना मुश्किल है.

जनता दल ने तो अभी अजगर का इस्तेमाल ही शुरू किया है. कांग्रेस बहुत पहले से इसका उपयोग करती आ रही है. 1985 में गुजरात में कांग्रेसी मुख्यमंत्री माधवसिंह सोलंकी ने चुनाव के पहले पिछड़ों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण को बढ़ा कर 28 प्रतिशत कर दिया था. इस तरह अहीर-क्षत्रिय-मुसलमान-हरिजन मोरचा द्वारा ब्राह्मण-बनिया-पटेल गुट को परास्त किया गया था. राज्य में दंगे होते हों तो हों, कांग्रेस के लिए चुनाव जीतना ज्यादा जरूरी है. हिंसा ने साबरमती तक को नहीं छोड़ा. माधो सिंह हार गये, ऊधो सिंह आ गये. जातिवाद-सांप्रदायिकता का जहर बना रह गया. आज वह विषधर चारों ओर जहर उगल रहा है. लेकिन क्या विषधर से बचने के लिए अजगर के पेट में जाना जरूरी है ?

पिछले दिनों तमिलनाडु विधानसभा चुनाव में जाति-धर्म को ले कर खुल कर राजनीति हुई. उसमें कुछ फिल्मी नायक-नायिकाओं ने भी भाग ले कर रंग ही जमा दिया. यहां तक कि कम्युनिस्टों ने भी संयम गंवा दिया और इस खेल में उतर पड़े. सी पी आइ एक अजगर पर सवार हुई, तो सी पी आइ (एम) दूसरे पर. सी पी आइ (एम) के अजगर के साथ एक भटका हुआ विषधर बच्चा भी था. जबकि उसकी मां (मुसलिम लीग) कांग्रेस के साथ रेंग रही थी, केरल में राघवन को निकाल कर मार्क्सवादियों ने जो महल तैयार किया था, तमिलनाडु में आ कर उसमें सेंध लग गयी. वोट की महिमा ही ऐसी है, जैसा कि कलकत्ता में ज्योति बसु ने भी स्वीकार किया. मार्क्स के बदले अजगर का सहारा ले कर तमिलनाडु में सी पी आइ को 1.2 प्रतिशत वोट और 3 सीटें एवं सी पी आइ (एम) को 3.4 प्रतिशत वोट और 15 सीटें मिलीं, जबकि डी एम के को 33.4 प्रतिशत वोट एवं 151 सीट, ए आइ डी एम के (जानकी-जयललिता) को 30.5 प्रतिशत वोट एवं 28 सीटें और कांग्रेस को 20.2 प्रतिशत वोट और 27 सीटें मिलीं. तमिलनाडु अजगरों का पुराना बसेरा है. मंडल आयोग के बहुत पहले ही यहां पिछड़ों के लिए नौकरी और शिक्षा में 50 प्रतिशत आरक्षण रहा एवं आदिवासी-हरिजन के लिए और 18 प्रतिशत.

जनता या नेता, नर या देव, सभी जाति या संप्रदाय के नाम पर बंट गये. कर्म नहीं, वंश महत्वपूर्ण है. यही अजगर धर्म है. कोई राष्ट्रीय नेता नहीं रहेगा. सभी जाति के नेता होंगे. बिहार में कोई श्रीकृष्ण सिंह की जयंती मना रहे हैं, तो कोई कुंवर सेना बना रहे हैं. सरदार वल्लभभाई पटेल कुर्मी थे, यह पहले कोई जानता नहीं था, पर अब उनका जन्मदिन मनानेवालों को देख कर मालूम हो रहा है. नेताजी सुभाषचंद्र बंगाली बन चुके हैं. अब सिर्फ नेहरू को इलाहाबादी और गांधी को गुजराती बनाना है. देश क्षेत्रों में बंट चुका है, क्षेत्र पहाड़ एवं मैदान में. आसू के पेट से आबसू निकल रहा है. देश के इतिहास और भूगोल दोनों पर अजगर हावी है.

जहां शोषण है, वहां बगावत होगी. बगावत की भाप यदि सही रास्ता तथा सही संगठन पाये, तो समाज बदलेगा, आगे बढ़ेगा. इसीलिए क्रांति को मार्क्स ने इतिहास का इंजन कहा है. लेकिन उस भाप के सामने यदि रास्ता न रहे या गलत रास्ता रहे, तो वह विस्फोट कर निकल जायेगी. संघर्ष होगा, लेकिन परिवर्तन नहीं होगा. यह दिशाहीन [illegible] आज की वस्तुस्थिति है.

**चारों ओर** अजगर की ही जय-जयकार हो रही है. अजगरों मे परिवार नियोजन का अभाव है. उनकी बेतहाशा वंशवृद्धि हो रही है. इसी के साथ झगड़े भी बढ़ रहे हैं. चारों ओर झगड़ाखंड बन रहा है. 1953 मे काका कालेलकर ने जो पहले पिछड़ा आयोग की रिपोर्ट पेश की थी, उसमे 2399 पिछड़ी जातियों का उल्लेख था. 1980 मे बिंदेश्वरी मंडल के नेतृत्व में जो दूसरी रिपोर्ट पेश की गयी, उसमें पिछड़ी जातियों की संख्या बढ़ कर करीब 4000 तक पहुंच गयी. अर्थात अजगर की ऐसी महिमा कि एक भी पिछड़ा अगड़ा नहीं बना, बल्कि लगभग 1600 अगड़े पिछड़े बन गये. जनसंख्या वृद्धि की दर से जातिसंख्या वृद्धि की दर ज्यादा हो गयी. यही दर जारी रही, तो कुछ ही दिनों में एक भी अगड़ा नहीं रहेगा, सभी पिछड़े बन जायेंगे. लेकिन इस वंशवृद्धि की खुशी के बीच एक नया खतरा भी पैदा हुआ—पिछड़े के अंदर और पिछड़ा. जाति के अंदर जाति. आरक्षण के अंदर आरक्षण. तमिलनाडु में पिछड़ों के लिए आरक्षण 50 प्रतिशत है. लेकिन उसके अंदर भी हाल मे वन्नियार सहित 39 समुदायों के लोगों (कुल जनसंख्या 1.5 करोड़, वन्नियार 65 लाख) को सर्वाधिक पिछड़ा घोषित कर 20 प्रतिशत आरक्षण और दिया गया है. फिर भी शांति नहीं. वन्नियार लोग नाना प्रकार की मांग ले कर लड़ाई में उतर चुके हैं. दूसरे लोग उसके विपरीत मांग ले कर आंदोलनरत हैं. अहिंसक तरीके से रास्ता रोको, बस तोड़ो, लोग मारो कार्यक्रम जारी है. अर्थात यदि पिछड़ों में 4000 जातियां हैं तो 4000 अजगर दौड़ पड़े हैं. कौन किसको खायेगा, अंदाजा लगाना असंभव है. इसलिए किसी एक अजगर के पेट में रहने से ही निस्तार नहीं, क्योंकि हमेशा उसके साथ दूसरे और बलवान अजगर के पेट में जाने का खतरा है. अर्थात जनता दल के नेता की तरह किस समय कौन किस अजगर के पेट में है, कहना मुश्किल है.

देवीलाल : जन्मदाता
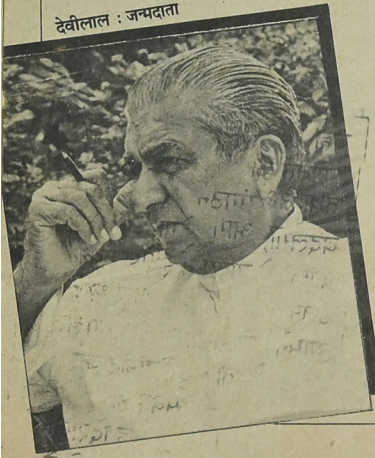
जातिवाद के अजगर को ले कर जब जनता दल चल पड़ा, तो संप्रदायवाद का विषधर ले कर कांग्रेस कैसे पीछे रहेगी ? और पीछे है भी नहीं. कश्मीर से कन्याकुमारी तक, देश जल रहा है. किसने कहां किताब लिखी, आग बंबई में लग गयी. हाजी मस्तान आज पाजी नहीं, नेता हैं. खुमैनी की बंशी पर बुखारी फन उठा कर नाच रहा है. उधर शंकराचार्य लोग भी मठ से निकल पड़े हैं. बेचारा राम कितने दिन बाहर भटकेगा. अयोध्या में उसके लिए महल बना देना है. एक जमाने में लोग भारत का आविष्कार करते थे. अब जाति तथा संप्रदाय का आविष्कार कर रहे हैं. हर दीवार पर पोस्टर है—'हम हिंदू हैं.' अचानक धर्म के प्रति सभी का झुकाव बढ़ गया. स्कूल और अस्पताल टूट रहे हैं. पैसे की कमी से मरम्मत नहीं हो पाती. मगर मंदिर, मसजिद धड़ाधड़ बन रहे हैं. इसके लिए पैसे की कमी नहीं. अचानक खबर आयी, ईश्वर के कान कमजोर हो चुके हैं. इसलिए भक्त लोगों की मांग सुनने के लिए मंदिर, मसजिद में माइक लग गये. कुंभ और हज में भीड़ बढ़ गयी. उस व्यक्ति से सावधान, जिसका भगवान आसमान मे रहता है. जॉर्ज बर्नार्ड शॉ सतर्क कर गये हैं. लेकिन तब और भी सतर्क होना है, जब भगवान आसमान से जमीन पर उतरते हैं. आज तमाम भगवान, नये एवं पुराने सभी, सड़क पर उतर चुके हैं. जन संपर्क कर रहे हैं. मुर्शिदाबाद के काटरा मसजिद से अयोध्या की राम जन्मभूमि तक एक-दूसरे के विरुद्ध भक्तों को उकसा रहे हैं. ग्रीक पुराण में है कि ग्रीस के डेलफी नगर मे सूर्य देवता अपोलो ने पाइथन को मारा था. लेकिन जमाना बदल गया है. अब पाइथन ने हमला बोल दिया है. अपोलो भाग रहे हैं और इनसान सलमान रश्दी की तरह छिप गये हैं.

**विकासवाद** की किताब में है कि संसार बनने की प्रक्रिया में करोड़ों वर्ष रेंगनेवाले जीवों का काल था, तब कितने ही प्रकार के छोटे-बड़े सरीसृप पृथ्वी पर राज करते थे, जिनका अंत किसी भयानक नैसर्गिक दुर्घटना या आकस्मिक प्राकृतिक परिवर्तन द्वारा हुआ था. इसी के कारण विशालकाय डायनासोर प्रजाति भी विलुप्त हो गयी थी, जिसके बाद स्तनपायी युग की शुरुआत हुई. भावी इतिहासकार भी भारत के इस युग को राजनीतिक रूप से रेंगनेवाले प्राणियों के युग के रूप में चिह्नित करेंगे.

विकास के क्रम मे दुनिया मे रेंगनेवाले जीवों के आविर्भाव का जैसे प्राकृतिक कारण रहा, वैसे ही राजनीति के क्रम में भारत में इन नये रेंगनेवाले नेताओं के जन्म के पीछे भी कुछ ऐतिहासिक कारण है. वह कारण है असमाप्त सामाजिक क्रांति और विकृत पूंजीवादी व्यवस्था, जहां मूल्यविहीन राजनीति सभी दलों का अवमूल्यन कर रही है. जहां शोषण है, वहां बगावत होगी. बगावत की भाप यदि सही रास्ता तथा सही संगठन पाये, तो समाज बदलेगा, आगे बढ़ेगा. इसीलिए क्रांति को मार्क्स ने इतिहास का इंजन कहा है. लेकिन उस भाप के सामने यदि रास्ता न रहे या गलत रास्ता रहे, तो वह विस्फोट कर निकल जायेगी. संघर्ष होगा, लेकिन परिवर्तन नहीं होगा. यह दिशाहीन संघर्ष ही आज की वस्तुस्थिति है. यदि वर्ग संघर्ष न रहे, तो सांप्रदायिक संघर्ष होगा. यदि वाम और दक्षिण के बीच अंतर घट जाये, तो पिछड़े और अगड़े के बीच अंतर बढ़ जायेगा. यदि तमाम राजनीतिक पार्टियों के बीच अंतर न रहे, तो राजनीतिक पार्टियों और जनता के बीच अंतर आ जायेगा. यही समाज का द्वंद्ववाद है. आज नक्सलवादी नेता नागभूषण पटनायक पटना में वोट की बात करते हैं, जबकि बहुजन पार्टी के नेता कांशीराम कलकत्ता में क्रांति की. जाति संघर्ष के बारे मे कहा जाता है कि वह 15 प्रतिशत अग्रसमाज के विरुद्ध 85 प्रतिशत पिछड़े समाज की बगावत है. यदि भारत मे हजारों साल पहले के परजीवी समुदाय का शासन घुमा-फिरा कर आज भी बरकरार रहे, जहां 4 प्रतिशत ब्राह्मण 62 प्रतिशत नौकरियों का, 5.5 प्रतिशत क्षत्रिय 80 प्रतिशत जमीन का और 6 प्रतिशत वैश्य 60 प्रतिशत व्यापार का मालिक रहें, जैसा कि कांशीराम का आंकड़ा बोलता है और इस दीवार को ढाहने के लिए कोई वर्ग-धर्म तथा सामाजिक क्रांति न रहे, तो रेंगनेवालों की राजनीति को कौन रोकेगा ? अजगर हर कुरसी पर कुंडली मार कर रहेगा. लेकिन प्रश्न है, क्या अजगर पर सवार हो कर इस स्थिति में परिवर्तन संभव है ? जाति की राजनीति जातिवाद का अंत कर सकती है ?

**पिछड़ा आयोग** की रिपोर्ट पेश करते हुए उसकी भूमिका में काका कालेलकर ने लिखा था—जाति के आधार पर आरक्षण तथा सुविधा की राजनीति एक ऐसी दवा है, जो रोग से भी अधिक खतरनाक है. ये खतरनाक नतीजें तीस साल में ही आज देश के कोने-कोने में स्पष्ट हैं. इसलिए रेंगनेवालों के इस युग का अंत करने के लिए जनता दल के अजगर या कांग्रेस पार्टी के विषधर की राजनीति को परास्त कर वर्ग संघर्ष, सांस्कृतिक क्रांति एवं समाजवाद के रास्ते में मनुष्य की राजनीति की शुरुआत करनी है. क्या देश की तमाम क्रांतिकारी वाम-जनवादी शक्तियां इस ऐतिहासिक जिम्मेदारी का बीड़ा उठाने के लिए तैयार हैं ?

ए के राय